विषयानुक्रमणिका

सम्पादकीय वक्तव्य

श्री श्वे. स्था० जैन धार्मिक शिक्षण शिविर का आयोजन गत अठारह वर्षों से होता आरहा है। इस शिविर में हजारों किशोर और तरुण विद्यार्थियों ने जैन तत्व ज्ञान, आगम, कथा, इतिहास आदि का ज्ञान प्राप्त कर अपने जीवन को संस्कारशील, श्रद्धामय और विवेकपूर्ण बनाने के साथ जिन शासन व प्रवचन की प्रभावना में सर्वत्र सक्रिय सहयोग व सेवा भावना का परिचय दिया। परिणाम स्वरूप जगह जगह स्थानीय व क्षेत्रीय शिविरों के आयोजन होने लगे। स्वाध्यायी शिविरों के आयोजनों में भी प्रशिक्षित विद्यार्थियों की भूमिका उत्साहवर्द्धक व महत्वपूर्ण रही।

शिविरों में व्यवस्थित पाठ्यक्रमानुसार शिक्षण प्रदान करने के उद्देश्य से शिविर पाठ्यक्रम तैयार करने की भावना बलवती हुई और इस कार्य के लिये दृढधर्मी आदर्श श्रावक श्री धींगड़मलजी सा. गिडिया के मंत्रीत्व काल में शिक्षण शिविर समिति के विनम्र आग्रहानुसार पं. र. श्री पारस मुनि जी म. सा. ने सुबोध जैन पाठमाला भाग १-२ का लेखन व संपादन किया।

गत वर्ष इन्दौर में सुधर्म प्रचार मण्डल व श्री श्वे. स्था. जैन धार्मिक शिक्षण शिविर के तत्वावधान में ऐतिहासिक

शिविर का आयोजन हुआ। शिविर समापन के अवसर पर शि
पाठ्यक्रमानुसार साहित्य तैयार कराने की चर्चा पुनः चलने
परम उदारमना शिक्षाप्रेमी, शासन सेवी सेठ श्री ...
सा. मालू ने शिविर में पधारे सुश्रावक श्री धीगडमलजी
और आदर्श उत्साही तत्त्वज्ञाता श्रावक श्री जगवन्तलाल भाई
व अनुभवी अध्यापकों से पूरे वर्ष के पाठ्यक्रम की संक्षिप्त
रेखा तैयार करने का सानुरोध आग्रह किया। तदनुसार
धीगडमल जी सा. के नेतृत्व में एक साहित्य निर्माण समिति
गठन किया गया और तदनुसार शिविर पाठ्यक्रम के द्वितीय
के रूप में श्री 'सुधर्मप्रचार मण्डल, जोधपुर ने यह पुस्तक आ
सामने प्रस्तुत की। पुस्तक को शिक्षणोपयोगी सुबोध और
बनाने के लिये सुबोध जैन पाठमाला और अन्य प्रकाशनों में
भी सामग्री संग्रहित की गई है। जिन विद्वान् लेखकों की
का इसमें संकलन हुआ है, उनके प्रति हम कृतज्ञता अ
करते हैं।

पुस्तक का सामग्री संकलन, संयोजन एवं लेखन में
श्रावक रत्न श्री धीगडमलजी सा० का मार्ग दर्शन महत्वपूर्ण रहा
प्रूफ संशोधन एवं प्रेस संबंधी कार्यों में तरुण उत्साही युवक
विजयसिंहजी कोठारी की सेवाएं भी सराहनीय रही।

पुस्तक कहां तक शिविरों व छात्रोपयोगी बन सकी
इसका निर्णय तो विद्वान् अध्यापक और प्रबुद्ध शिविर
करेंगे। किन्तु पुस्तक के पठन-पाठन से शिविरार्थियों में
शासनानुराग श्रद्धा, भावना व विवेक शील दृष्टिकोण विक
हुआ तो हम अपना श्रम सार्थक समझेंगे।

महेशचन्द्र जैन, लक्ष्मीलाल

सचिव की विज्ञप्ति

सुधर्म प्रचार मण्डल की स्थापना के पश्चात् शिविरोप-
योगी व स्वाध्यायोपयोगी साहित्य के प्रकाशन के लिये हम प्रयत्न
शील हैं। इसके अन्तर्गत सुधर्म स्तवन संग्रह भाग १ व २ का
प्रकाशन सर्वत्र लोकप्रिय रहा। "सुधर्म प्रवचन" पत्रिका का
प्रकाशन भी पाठ्यक्रम के दृष्टिकोण से स्वाध्यायियों की तात्विक
जानकारी व जिज्ञासा की दृष्टि से सहायक सिद्ध हुआ।

साहित्य प्रकाशन के इसी क्रम में अब हम सुधर्म पाठ-
माला भाग २ का प्रकाशन आपके कर कमलों में प्रस्तुत कर
रहे हैं। तीसरा भाग ग्रीष्मावकाश के पूर्व प्रकाशित हो सके,
इसके लिये हम प्रयत्नशील हैं। हमारी भावना है कि ग्रीष्मावकाश
में आयोजित शिविरों में इस पुस्तक की उपलब्धि शिविरार्थी
शिक्षार्थियों को लाभान्वित कर सके।

इसके साथ शीघ्र ही हम स्वाध्यायियों की वक्तृत्व कला
व भाषण शैली को रोचक व प्रभावी बनाने के उद्देश्य से सुधर्म
पर्वाराधन प्रवचन माला का प्रकाशन भी करने जा रहे हैं। जिन-
संस्थाओं, शिविरों व स्वाध्यायियों को इन पुस्तकों की आवश्यकता
हो वे हमें सेवा का लाभ प्रदान करें। पुस्तकों की कीमत लागत
मात्र रखी गई है।

नेमीचन्द सांखला
सचिव
श्री सुधर्म प्रचार मण्डल
जोधपुर।

)

गति के चरण:—

(अ) प्रशिक्षण एवं शिक्षण शिविरों का आयोजन:—उक्त उद्देश्यों की पूर्ति एवं स्वाध्यायियों की ज्ञान वृद्धि के लिये नाथ- द्वारा, जोधपुर, घासा, बडीद, येवला, बेंगलोर, कुन्नूर, बोदवड़ दाणावास, सामलगाव, जाडमा, भागर, दुर्ग दामनगर, इन्दौर मालेगाव, महमदाबाद, कड़ा, लीमडा आदि कई क्षेत्रों स्वाध्यायी प्रशिक्षण शिविर एव महिला छात्र-छात्राओं के शिक्षण शिविरों का आयोजन किया गया है।

(ब) पर्युषण पर्वाराधना:—पर्युषण महापर्व के शुभावस पर धर्माराधन एवं धर्म प्रचार के लिये १९७६ में ७६ क्षेत्रों ६५, १९७७ में ६५ क्षेत्रों में १८५, १९७८ में १११ क्षेत्रों २३५, १९७९ में १२७ क्षेत्रों में २६३ व १९८० में १३० क्षे में २५० स्वाध्याया बन्धुओं को देश के सुदूर क्षेत्रो में भेजा।

यह सन्तोष एवं हर्ष की बात है कि स्वाध्यायियों को से भावना एवं प्रवचनाराधना एवं प्रभावना के संबंध में सब ओर प्रशस्ति एवं प्रशंसा पत्र प्राप्त हुए। निश्चय ही मंडल को प सेवाभावी, सदाचारी, श्रद्धावान् स्वाध्यायियों पर गर्व है।

हमारे स्वाध्यायी बधु अपनी निरन्तर ज्ञान वृद्धि के द्वा मंडल की यश पताका को महराने, फहराने के लिये भारतीयों हृदय में जैन धर्म की अहिंसा, सर्वोदय, मौलिकता, विशुद्ध के भाव जगाकर उसकी जैनत्व के सच्चे संस्कार दृढ़ करेंगे।

पर्युषण प्रवचन पत्र का प्रकाशन:—

अक्टूबर १९७७ में स्वाध्यायियों की ज्ञान वृद्धि के लि एवं धर्म रुचि को जागृत करने के लिये गुरु प्रवचन

प्रकाशन किया जा रहा है। इस पत्र की विषय सामग्री सम्पादन, लेखन, एवं संयोजन में इसे पारिवारिक स्वाध्यायी-योगी बनाने का लक्ष्य रखा जाता है। यहाँ एक ऐसा पत्र है जो सामान्य स्वाध्यायी से लेकर उच्चस्तर साधकों के लिये भी समान रूप से उपयोगी रहा है।

साहित्य प्रकाशनः—

स्वाध्यायी सज्जनों की प्रवचन कला को विकसित करने के लिये तदनुसार साहित्य सृजन एवं निर्माण का लक्ष्य भी समान रूप से गतिशील रहा है। इसके अन्तर्गत अन्तकृत विवेचन, पूर्ण स्तवन संग्रह भाग १ व २ का प्रकाशन महत्वपूर्ण है। पूर्ण पर्युषण प्रवचन पुस्तक का नोट प्रकाशन भी स्वाध्यायियों की सुविधार्थ विचाराधीन है।

स्थानीय शाखाओं की स्थापनाः—

स्वाध्याय और शिक्षण कार्य के विशेष और व्यवस्थित प्रचार के लिये निम्नानुसार शाखाएँ स्थापित की गई हैं—

राजस्थान में—पाली, टंग, भोपालसागर
मध्यप्रदेश में—इन्दौर, राजनांद गाव
महाराष्ट्र में—येवला
कर्नाटक में—बेंगलोर
गुजरात में—अहमदाबाद

धार्मिक शिक्षण शालाओं को अनुदानः—धार्मिक शिक्षण शालाओं के सम्यक् संचालन व विकास के लिये मंडल की ओर से कई धार्मिक पाठशालाओं को अनुदान दिलाने की व्यवस्था है। सर्व पाठशालाओं एवं स्वाध्यायियों को निःशुल्क साहित्य वितरित किया जाता है।

"भावावस्सयं वंदे"

१. सूत्र - विभाग

श्री श्रावक आवश्यक सूत्र

प्रवेश प्रश्नोत्तरी

प्र. : आवश्यक किसे कहते हैं ?

उ. : सभी बातों में जो बातें चतुर्विध संघ को सबसे पहले जाननी चाहिए, और सबसे पहले करनी चाहिए, उन्हें आवश्यक कहते हैं।

प्र. : ऐसी आवश्यक बातें कितनी हैं ?

उ. : जैसे लौकिक क्षेत्र में १. लौकिक विद्या पढ़ना, नीति से रहना, २. राष्ट्रदेवी, लक्ष्मी, सरस्वती आदि की पूजा करना ३. माता-पिता गुरु आदि को प्रणाम करना, ४. नीति-रीति के अतिक्रमण पर पश्चात्ताप करना, ५. उल्लंघन करने वाले को कारावास, ६. हथकड़ी बेड़ी आदि का दण्ड देना आदि आवश्यक माने जाते हैं। वैसे ही धार्मिक क्षेत्र में चतुर्विध संघ को १. सामायिक, २. चतुर्विंशति-स्तव, ३. वन्दना,

४ प्रतिक्रमण, ५ कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान करना—ये वाते आवश्यक मानी गई हैं।

प्र : सामायिक किसे कहते हैं ?

उ. : १. सम्यग्ज्ञान (तत्वज्ञान) सीखना, २. सम्यग्दर्शन (तत्वों पर श्रद्धा) रखना ३. सम्यग्चारित्र स्वीकार करना (जिसमें या तो साधु-धर्म स्वीकार करना या श्रावक-धर्म (व्रत, स्वीकार करना या श्रावक धर्म के नववें व्रत में एक मुहूर्त तक दो करण तीन योग से १८ पापों का त्याग करना) तथा ४ सम्यगतप स्वीकार करना।

प्र : हमने तो 'श्रावक के नववें व्रत को सामायिक कहते हैं'—यही सुना और सीखा है। आपने सामायिक के इतने अर्थ कैसे बताये ?

उ. : नाम की दृष्टि से श्रावक के नववें व्रत का नाम 'सामायिक' होने से वही सामायिक के रूप में अति प्रसिद्ध है। पर गुण की दृष्टि से 'सम्यग्ज्ञान आदि सबसे समभाव की आय होती है,अतः इन सभी को सामायिक ही समझना चाहिए।

प्र : सामायिक अर्थात् सम्यग्ज्ञान दर्शन, चारित्र और तप आवश्यक क्यों है ?

उ. : जैसे वन से नगर में पहुँचने वाले को १. मार्ग आदि का सम्यग्ज्ञान आवश्यक है, २. मार्ग आदि के ज्ञान पर पूर्ण श्रद्धा होना आवश्यक है, ३. वन में भटकना छोड़ना आवश्यक है और ४ मार्ग पर चलना आवश्यक है, वैसे ही हम संसार-वनमें परिभ्रमण कर रहे हैं यदि हम मोक्षनगर में पहुँचना चाहते हैं, तो हमें १ मोक्ष के मार्ग आदि-का ज्ञान करने का

सम्यग्ज्ञान आवश्यक है, मार्ग-श्रद्धा-रूप नव तत्वों की सम्यक् श्रद्धा आवश्यक है, वन में भटकना छोड़ना-रूप चारित्र आवश्यक है तथा मार्ग में चलना-रूप सम्यग्तप आवश्यक है।

प्र : चतुर्विंशति-स्तव किसे कहते हैं ?

उ : जैन धर्म के प्रवर्तक भगवान् ऋषभदेव से लेकर भगवान् महावीर स्वामी तक चौबीस तीर्थंकरों का मन से नाम-स्मरण और गुण-स्मरण करना, वचन से नाम-स्तुति और गुण-स्तुति करना, काया से नमस्कार करना उसकी प्रार्थना करना आदि।

प्र. : वन्दना किसे कहते हैं ?

उ. : क्षमा आदि गुणों के धारक (महाव्रत समिति गुप्ति आदि के धारक) साधुओं को प्रदक्षिणावर्तन देना, पचांग वन्दना करना, उनके चरण स्पर्श करना, उनकी चारित्र सम्बन्धी समाधि तथा शरीर, इन्द्रिय, मन-सम्बन्धी सुख-शाता पूछना, उनकी की गई आशातना का पश्चात्ताप करना आदि।

प्र. : चतुर्विंशतिस्तव और वन्दना आवश्यक क्यों हैं ?

उ : जैसे जो पुरुष पहले वन में भटक रहा था, उसे आवश्यक है कि—'वह नगर का मार्ग बतलाने वाले पुरुष के उपकार को मानकर उसकी स्तुति आदि करे, वन्दना आदि करे।' इसी प्रकार जब हम संसार-वन में भटक रहे थे, हमें मोक्ष-नगर के अस्तित्व का भी ज्ञान नहीं था, तब देव गुरु ने हमें शब्द सुना कर मोक्ष-नगर का मार्ग बताया और मोक्ष-मार्ग पर चढ़ाया। अतः हमें भी आवश्यक है कि हम देव गुरु की स्तुति आदि करें तथा उनको वन्दना आदि करें।

पूर्ण नष्ट कर देते हैं। अतः विराधकता और सम्यक्त्वादि विनाश से बचने के लिए भी प्रतिक्रमण आवश्यक है।

प्र. कायोत्सर्ग किसे कहते हैं ?

उ : १. अज्ञान, मिथ्यात्व, अव्रत आदि की सामान्य शुद्धि लिए अथवा २. अनजान में लगे हुए अतिचारों की शुद्धि के लिए प्रायश्चित्त के रूप में नियत कुछ समय तक देह की ममता छोड़कर तीर्थंकरों का ध्यान लगाना।

प्र. : कायोत्सर्ग आवश्यक क्यों है ?

उ. : मार्ग में चलते हुए जो कांटे पैर में लगकर घाव करके घाव के भीतर रहे रक्त को विषाक्त कर देते हैं, उन कांटों को निकालने के साथ उनके द्वारा किये हुए घाव में रहे हुए विषाक्त रक्त को निकालने के लिए चमड़ी को इधर-उधर दबाने से होने वाले दु:ख के प्रति ध्यान न देते हुए जैसे चमड़ी को इधर-उधर दबाना आवश्यक होता है, जिसमें वह विषाक्त रक्त निकलकर घाव शुद्ध हो जाय, उसी प्रकार अविवेक असावधानी आदि से लगे अतिचारों से जो ज्ञानादि में घाव पड़ने के साथ रक्त विषाक्त बन जाता है, उसे निकालने के लिए देह-दु:ख की ममता छोड़कर कायोत्सर्ग करना आवश्यक है जिससे वह विषाक्त रक्त निकल कर ज्ञानादि के घाव शुद्ध हो जायें।

प्र प्रत्याख्यान किसे कहते हैं ?

उ. : १. अज्ञान, अव्रत, मिथ्यात्व आदि की कुछ विशेष शुद्धि के लिए अथवा २. जानते हुए लगे अतिचारों की शुद्धि के लिए प्रायश्चित्त रूप में नमस्कार सहित (नवकारसी) आदि प्रत्याख्यान धारण करना अथवा ३. प्रायश्चित्त न हो तो भी तप लाभ के लिए प्रत्याख्यान करना।

प्र. : प्रत्याख्यान आवश्यक क्यों है?

उ. : कुछ कांटे पैर में ऐसे चलकर भीतर के रक्त को इतना विषाक्त कर देते हैं कि उस रक्त को निकालने के साथ घाव पर कुछ लेप की पट्टी भी करना आवश्यक हो जाता है। वैसे ही जानते हुए लगे अतिचारों से ज्ञानादि में घाव पड़ने के साथ रक्त अति विषाक्त बन जाता है। अत: उस विषाक्त रक्त को कायोत्सर्ग से निकालने के साथ ज्ञानादि घावों पर लेप-पट्टी के समान प्रत्याख्यान करना आवश्यक है, जिससे ज्ञानादि के कायोत्सर्ग से शुद्ध हुए घाव पूर जाय (बन्द हो जाय)

प्र. : आवश्यकों का क्रम इस प्रकार क्यों रक्खा गया है?

उ. : सामायिक अर्थात् सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप, ही मोक्ष का मार्ग है, अत: यह सबसे मुख्य है—यह बताने के लिए सामायिक को सबसे प्रथम रक्खा गया है।

१. 'मोक्षप्रदायी सामायिक धर्म' को अरिहन्त देव ने प्रकट किया और हमें 'गुरुदेव ने उसे सिखाया।' अत: कृतज्ञता की दृष्टि से 'हम तीर्थंकर-स्तव और गुरु-वन्दना करें'—यह बताने के लिए क्रमश: दूसरे और तीसरे स्थान पर चतुर्विंशतिस्तव और वन्दना रक्खी गई है। २. 'हम अपनी सामायिक आराधना को तीर्थंकर स्तव और गुरु-वन्दना करके निर्विघ्न मंगलमय बनावें।' इसलिए भी इन्हें दूसरा और तीसरा स्थान दिया है। ३. 'पापों का पश्चात्ताप और अतिचारों का प्रतिक्रमण हम अरिहन्त-साक्षी से और गुरुदेव के चरणों में करें।' इसलिए भी इन्हें दूसरा तीसरा स्थान दिया है। अरिहन्त-साक्षी से हम में [illegible]न की भावना दूर होती है और गुरु के चरणों से हमें अतिचारों की शुद्धि का मार्ग मिलता है।

१. 'जिसने सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन पाया वही सम्यक्तया पाप और धर्म को समझकर अपने पापों का सच्चा पश्चात्ताप-रूप प्रतिक्रमण कर सकेगा'—यह बताने के लिए प्रतिक्रमण का चौथा स्थान रक्खा है। ३. 'सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन पाने के बाद या चारों को पाने के बाद प्रायः उनमें अनाभोगादि से अतिचार लगते रहते हैं।' अतः उन अतिचारों के प्रतिक्रमण के लिए भी प्रतिक्रमण का स्थान चौथा रक्खा है।

अनाभोग आदि से लगने वाले अतिचारों की अपेक्षा अविवेक, असावधानी आदि से लगे बड़े अतिचारों की कायोत्सर्ग शुद्धि करता है। इसीलिए कायोत्सर्ग को पाँचवा स्थान दिया है तथा अविवेकादि से लगने वाले अतिचारों की अपेक्षा जानते हुए दर्प आदि से लगे बड़े अतिचारों की प्रत्याख्यान शुद्धि करता है। अतः प्रत्याख्यान को छठा स्थान दिया है। अथवा प्रतिक्रमण और कायोत्सर्ग के द्वारा अतिचार की शुद्धि हो जाने पर प्रत्याख्यान द्वारा तप-रूप नया लाभ होता है। अतः प्रत्याख्यान को छठा स्थान दिया है।

प्र. : ये आवश्यक कब किये जाते हैं ?

उ. : जब भी अनुकूल अवसर (समय) मिले, तभी किये जा सकते हैं। पर १. दिन के अन्त में अर्थात् सूर्यास्त के पश्चात् और मन्द तारे दिखने लग जायें, लाली और प्रकाश मिट जायें—इसके बीच लगभग एक मुहूर्त में, २. रात्रि के अन्त में अर्थात् मन्द तारे दिखने बन्द हो जायें, लाली और प्रकाश आरम्भ हो जाय, तब से लेकर सूर्योदय के पहले तक लगभग एक मुहूर्त में, ये छहों आवश्यक अवश्य करने चाहिए।

प्र : नित्य उभयकाल आवश्यक से क्या लाभ है ?

उ . १ सामायिकादि आवश्यकों का ज्ञान (स्मरण) रहता है । २ 'वे अवश्यकरणीय हैं' यह श्रद्धा रहती है । ३ यदि व्रत ग्रहण किये हों, तो ग्रहित व्रतों की स्मृति रहती है, जिससे व्रतों का सम्यक्पालन होता रहता है । ४. यदि व्रत ग्रहण न किये हो, तो व्रत-ग्रहण की भावना होती है । ५ दिन-रात्रि में कभी भी देव गुरु का स्मरण न हुआ हो, तो कम-से-कम एक दिन रात्रि में दो बार स्मरण आदि हो जाता है । ६ सम्यक्त्वादि में लगे अतिचारों की शुद्धि होती रहती है । ७. यदि व्रत ग्रहण न भी किया हो, तो भी पाप के प्रति पश्चात्ताप होता है । ८. स्वाध्याय होता है । इत्यादि नित्य आवश्यक करने में हमें कई लाभ हैं । हम नित्य आवश्यक करें, तो १. दूसरों को भी आवश्यक का महत्व ध्यान में आता है । २. वे भी आवश्यक का ज्ञान करते हैं । ३. इन्हें भी आवश्यक पर श्रद्धा होती है । ४. वे भी देव-स्तव और गुरु-वन्दना करते हैं । ५. वे भी पापका पश्चात्ताप करते हैं और कदाचित् व्रत धारण भी करते हैं । इत्यादि हमारे नित्य आवश्यक से दूसरों को भी कई लाभ हैं ।

प्र. : जैसे 'दीपावली आदि को घर-दुकान आदि को विशेष साफ किया जाता है, धुलाई-पुताई की जाती है, गत वर्ष के आय-व्यय का मिलान किया जाता है, लक्ष्मी का विशेष पूजन किया जाता है, घर-दुकान में नई-नई वस्तुएं बसाई जाती हैं। वैसे ही उभयकाल आवश्यक की अपेक्षा भी कभी विशेष आवश्यक भी किये जाते हैं क्या ? जिससे आत्मा की विशेष शुद्धि हो, धार्मिक हानि-लाभ का ज्ञान हो, देव गुरु की विशेष स्तुति-वन्दना हो । आगामी वर्ष के लिए विशेष प्रत्याख्यान हों ।

उ. हां, कृष्ण और शुक्ल पक्ष के अन्त में अर्थात् अमावस्या और पूर्णिमा (कभी-कभी चतुर्दशी) के दिन के अन्त में, वर्षा, शीत और उष्णकाल के चातुर्मास के अन्त में अर्थात् कार्तिक पूर्णिमा, फाल्गुनी पूर्णिमा और आषाढ़ी पूर्णिमा (कभी-कभी चतुर्दशी) के दिन के अन्त में तथा संवत्सर (वर्ष) के अन्त में अर्थात् भाद्रपद शुक्ला पंचमी (कभी-कभी चतुर्थी) के दिन के अन्त में, विशेष आवश्यक किये जाते हैं। कई इन दिनों में दैवसिक प्रतिक्रमण के अतिरिक्त पाक्षिक, चातुर्मासिक और सांवत्सरिक प्रतिक्रमण स्वतंत्र रूप से करने की भी मान्यता रखते हैं और कई लोग चातुर्मास और संवत्सर के अन्त में दो प्रतिक्रमण भी करते हैं।

प्र. मास वृद्धि होने पर चातुर्मासिक और सांवत्सरिक (प्रतिक्रमण) कब करने चाहिए ?

उ. जो अधिक मास हो, उसे गौण कर देना चाहिए (गिनना नहीं चाहिए) और गौण करके वर्षा आदि किसी भी चातुर्मास में कोई भी मास क्यों न बढ़ा हो, कार्तिक अथवा द्वितीय कार्तिक पूर्णिमा आदि के दिन के अंत में प्रतिक्रमण करना चाहिए। संवत्सरी के सम्बन्ध में तीन मत हैं—१. श्रावण दो होने पर भाद्रपद में प्रतिक्रमण करना और भाद्रपद दो होने पर दूसरे भाद्रपद में प्रतिक्रमण करना, २. श्रावण दो होने पर भाद्रपद में प्रतिक्रमण करना और भाद्रपद दो होने पर पहले भाद्रपद में प्रतिक्रमण करना, ३. श्रावण दो होने पर दूसरे

---

*इस सम्प्रदाय में वर्धमान 'श्रमण' संघ का नियम मानने वालों को एक प्रतिक्रमण करना चाहिए।

श्रावण में प्रतिक्रमण करना और दो भाद्रपद होने पर
भाद्रपद में प्रतिक्रमण करना।

इनमें से पहला मत 'चातुर्मासिक प्रतिक्रमण में
अधिक मास गौण किया जाता है', वैसे ही दूसरा मत 'संवत्
प्रतिक्रमण में भी अधिक मास गौण करना, इस मान्यता
लेकर चलने वालों का है। और तीसरा मत 'वर्षावास आरम्भ
होने के पश्चात् ४९-५०वें दिन संवत्सरी करना' इस मान्यता
वालों का है।

प्र : दूसरों की सन्ध्यादि में और हमारे आवश्यक
में क्या अन्तर है?

उ. : दूसरे लोगों की सन्ध्या आदि में केवल ईश्वर-स्मरण
और प्रार्थना आदि की मुख्यता रहती है, अपने ज्ञानादि धर्मों
की स्मृति तथा अपने पापों के प्रतिक्रमण की मुख्यता नहीं
रहती, पर हमारे आवश्यक में अपने ज्ञानादि धर्मों की स्मृति
तथा अपने पापों के प्रतिक्रमण की मुख्यता है, जो अन्तरंग दृष्टि
से (उपादान दृष्टि से) अधिक आवश्यक है। इसलिए हमारा
आवश्यक उपयुक्त और बढ़कर है।

प्र : सूत्र किसे कहते हैं।

उ. : लोक में सूत को सूत्र कहते हैं, जिसमें माली बाग
सूत्र पिरोता है या मणियार मणि-मोती पिरोता है। प
धार्मिक क्षेत्र में गणधरों की शब्द रचना को 'सूत्र' कहते

सम्बन्ध में वर्धमान श्रमण संघ का नियम पालने वालों को
के अनुसार प्रतिक्रमण करना चाहिए।

है, जिनमें गणधर, भगवान् की आज्ञा, उपदेश, मत आदि रूप-रत्नों को गूँथते हैं।

प्र. श्रावक आवश्यक सूत्र किसे कहते हैं?

उ. : जिसमें श्रावक-श्राविकाओं को सर्वप्रथम अवश्य जानने योग्य और नित्य दोनों सन्ध्याओं को अवश्य करने योग्य तीर्थंकरों द्वारा बताए हुए सामायिकादि छह आवश्यक गणधरों ने गूँथे हों, उसे 'आवश्यक सूत्र' कहते हैं।

प्र. आवश्यक सूत्र का प्रसिद्ध दूसरा नाम क्या है?

उ. प्रतिक्रमण सूत्र।

प्र. आवश्यक सूत्र को प्रतिक्रमण सूत्र क्यों कहते हैं?

उ. : क्योंकि आवश्यक सूत्र के छह आवश्यकों में प्रतिक्रमण सूत्र अक्षर प्रमाण में सबसे बड़ा है।

प्र. वर्तमान में आवश्यक सूत्र के कितने भाग किए जाते हैं?

उ. : वर्तमान में सामायिक सूत्र और प्रतिक्रमण सूत्र—यों प्रायः आवश्यक दो भागों में बाँटा जाता है। सामायिक सूत्र में १ सामायिक और २. चतुर्विंशतिस्तव—ये दो आवश्यक दिये जाते हैं। शेष ३. वंदना, ४. प्रतिक्रमण, ५. कायोत्सर्ग और ६. प्रत्याख्यान—ये चार आवश्यक प्रतिक्रमण सूत्र में दिये जाते हैं।

पडिक्कमणं	: प्रतिक्रमण (आवश्यक) को
ठाएमि ।	: करता हूं ।
देवसियं ।	दिन सम्बन्धी

कायोत्सर्ग प्रतिज्ञा

१-२. णाण-दंसण	: ज्ञान-दर्शन (सम्यक्त्व)
३. चरित्ताचरित्त	: चारित्राचारित्र (श्रावक का देश-चारित्र)
४. तव	: और तप के (गव ९९)
अइयार	: अतिचारों का
चिन्तवणत्थं	: चिन्तन करने के लिए
करेमि काउस्सग्गं ।	करता हूं, कायोत्सर्ग को

प्रश्नोत्तर

प्र. : क्षेत्र-विशुद्धि किसे कहते हैं ?

उ : किसी भी कार्य को प्रारम्भ करने से पहले उसके लिए भूमिका की शुद्धि करना। जैसे धोबी वस्त्र धोने से पहले

प्रतिक्रमण में 'देवसियं चाउम्मासियं' तथा सांवत्सरिक प्रतिक्रमण में 'देवसियं-संवच्छरियं' बोलें । दो प्रतिक्रमण करने वाले चातुर्मासान्त के दिन पहले प्रतिक्रमण में 'देवसियं' तथा दूसरे प्रतिक्रमण में 'चाउम्मासियं' बोलें । इसी प्रकार संवत्सरान्त में पहले में 'देवसियं' तथा दूसरे में 'संवत्सरियं' बोलें । इसी प्रकार 'देवसिय, देवसियों और 'देवसियाए' के स्थान पर 'राइयं' 'राइओ' और 'राइयाए' बोलें ।

निता की शुद्धि करता है, वैसे ही प्रतिक्रमण करने से पहले उपयोगपूर्वक करके 'क्षेत्र-विशुद्धि' की जाती है।

प्र : निश्रा किसे कहते है ?

उ. : जिन्हें प्रतिक्रमण कण्ठस्थ न हो, जो उसके भाव व विधि आदि को न जानते हो, वे, (जानते भी हो, तो भी) 'हमारे पाप निष्फल हों'—इस भावना को लेकर प्रतिक्रमण करने वाला 'जो कुछ शब्दोच्चारण करे, वह हमारे लिए भी हो।' इस आशय से प्रतिक्रमण करने वाले का आश्रय ग्रहण करें, उसे निश्रा कहते हैं।

प्र : श्रावक के देश-चारित्र को चारित्राचारित्र क्यों कहते हैं ?

उ. : वह कुछ चारित्र ग्रहण करता है, और कुछ नहीं इसलिए।

प्र : आलोचना किसे कहते है ?

उ. : मेरे धर्म में कोई अतिचार लगा या नहीं ? यदि लगा हो, तो उसे दूर करूं।' इस विचार से १ अपने अतिचारों को, २. शुद्ध भाव से, ३ सम्यक्तया (धीरे-धीरे गहराई पूर्वक) देखने को यहाँ 'आलोचना' कहा है।

प्र. : अतिचार किसे कहते है ?

उ. : धर्म में कुछ दोष लगाने को। १ दर्प (बिना कारण जान-बूझकर व्रत तोड़ने की बुद्धि) से, २. प्रमाद (व्रत के प्रति अनादर, [illegible] में रुचि आदि) से तथा प्रद्वेष [illegible]

१ अनाभोग (प्रत्याख्यान की स्मृति न रहना, 'ऐसा करने से व्रत में दोष लगता है'—इसका ज्ञान न होना, मैंने जो प्रत्याख्यान लिया है, 'उसमें इसका भी त्याग सम्मिलित है'—इसका भान न होना आदि) से तथा २ सहसाकार (प्रत्याख्यान की रक्षा करने की भावना और प्रवृत्ति होते हुए भी अकस्मात् बलात्कार हो जाना आदि) से व्रत में केवल मन्द अतिचार लगता है। इन दोनों से अनाचार नहीं होता।

शेष १. आतुरता (भूख-प्यास आदि से अत्यन्त पीड़ित हो जाने) से, २. आपत्ति (रोग आदि) से, ३. शंका (ऐसा करने से मेरे प्रत्याख्यान में अतिचार लगेगा या नहीं—ऐसे सन्देह) से, ४ भय (देवादि के भय) से तथा ५. विमर्श (किसी की परीक्षा के लिए अपने प्रत्याख्यान के प्रति गौणता आ जाने से) प्रत्याख्यान में कुछ दोष लगाना मध्यम अतिचार है और पूरा दोष लगा देना कभी तीव्र अतिचार होता है, तो कभी अनाचार भी हो जाता है।

प्र० : अतिचारों का प्रायश्चित्त बताइये।

उ. . मन्द अतिचार का प्रायश्चित्त 'हार्दिक पश्चात्ताप' 'मिच्छा मि दुक्कडं' है। मध्यम और तीव्र अतिचारों का प्रायश्चित्त नवकारसी (नमस्कार सहित) आदि है। अनाचार के पश्चात् पुन. व्रत लेना पड़ता है।

'इच्छामि ठाएमि १

विधि 'इच्छामि णं भंते' के पश्चात् वंदना करके —'यह सामायिक आवश्यक की आज्ञा है'—कहकर पहले आवश्यक की आज्ञा ले। फिर ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप सम्बन्धी सभी प्रत्याख्यानों की स्मृति के रूप में 'करेमि भंते' पढ़े। यहाँ पहला आवश्यक समाप्त हो जाता है, पर आगामी चौथे आवश्यक की भूमिका के लिए इसी आवश्यक में निम्न 'इच्छामि ठामि' का पाठ पढ़ें। फिर 'तस्सउत्तरी' कहकर कायोत्सर्ग करें। जैसे धोबी वस्त्र धोने से पहले 'वस्त्र में कहाँ-कहाँ मैल लगा है'—यह ध्यानपूर्वक देखता है, जिससे वस्त्र-शुद्धि उत्तम होती है, वैसे ही आगामी प्रतिक्रमण के लिए 'दिन आदि में क्या-क्या अतिचार लगे हैं'—यह जानने के लिए कायोत्सर्ग में ९९ अतिचार और समुच्चय १८ पाप का चिन्तन करें। अतिचार-चिन्तन के लिए चौथे आवश्यक के 'आगमे तिविहे' से लेकर 'संलेखना' तक के १५ पाठों में अतिचार अंश वाले पाठ कहे। मिश्रित प्रतिक्रमण करने वाले कायोत्सर्ग में अर्थ-प्रधान अतिचार के पाठ पढ़ते हैं और चौथे आवश्यक में अन्तिम बार मूल-प्रधान अतिचार पाठ पढ़ते हैं। मूल-प्रधान प्रतिक्रमण वाले सर्वत्र मूल-प्रधान अतिचार पाठ पढ़ते हैं और अर्थ-प्रधान प्रतिक्रमण वाले सर्वत्र अर्थ-प्रधान अतिचार पाठ पढ़ते हैं। (१८ पाप के पश्चात् कई 'इच्छामि ठामि' भी 'जं विराहियं' तक पढ़ते हैं) जिन्हें पाठ कण्ठस्थ न हो, वे ८ लोगस्स, या प्रति लोगस्स ४ नमस्कार मंत्र के गणित से ३२ नमस्कार

अणिच्छियव्वो	(मन से) अनिच्छनीय की इच्छा...
असावग-पाउग्गो	(यो) श्रावक धर्म विरुद्ध काम किया हो
१. णाणे तह २. दंसणे	(करके) ज्ञान तथा दर्शन में
३. चरित्ताचरित्ते	चारित्राचारित्र (श्रावक व्रत) में
१. सुए	(दूसरे शब्दों में) श्रुत (ज्ञान) में
२. ३. सामाइए	सामायिक (दर्शन तथा श्रावक व्रत अतिचार लगाया हो।
तिण्हं गुत्तीणं	तीन गुप्तियां न की हो
चउण्हं कसायाणं	चार कषायें की हो।
पंचण्हमणुव्वयाणं	पांच अणुव्रतों का
तिण्हं गुणव्वयाणं	तीन गुणव्रतों का
चउण्हं सिक्खावयाणं	चार शिक्षाव्रतों का (इस प्रकार ५+३+४=१२)
बारस-विहस्स	बारह प्रकार के
सावग-धम्मस्स	श्रावक धर्म की
जं खंडियं	जो (कुछ) खंडना की हो
जं विराहियं	जो (अधिक) विराधना की हो

अतिचार प्रतिक्रमण

तस्स मिच्छा मि दुक्कडं उसका मेरा पाप निष्फल हो।

उ : जो अणुव्रतों को गुण अर्थात् लाभ पहुँचाते हों।

प्र : शिक्षाव्रत किसे कहते हैं ?

उ : जो बारबार शिक्षा अर्थात् अभ्यास करने योग्य हो।

—

दूसरा-तीसरा आवश्यक

विधि : पहले आवश्यक की समाप्ति पर वंदना करके 'पहला सामायिक आवश्यक पूरा हुआ। दूसरे 'चतुर्विंशतिस्तव' आवश्यक की आज्ञा है'—कहकर दूसरे आवश्यक की आज्ञा ले। आज्ञा लेकर १ बार चतुर्विंशतिस्तव का पाठ 'लोगस्स' कहे।

। इति दूसरा आवश्यक समाप्त ।

समाप्ति पर वंदना करके 'पहला सामायिक तथा दूसरा चतुर्विंशतिस्तव ये दो आवश्यक पूरे हुए। तीसरे वंदना आवश्यक की आज्ञा है'—कहकर तीसरे आवश्यक की आज्ञा ले। आज्ञा लेकर दो बार निम्न पाठ पढ़ें।

। इति तीसरा आवश्यक समाप्त ।

'इच्छामि खमासमणो' पढ़ने की विधि

गुरु के समक्ष या पूर्व, उत्तर या ईशान कोण में अपने आसन को छोड़कर, खड़े रहकर, हाथ जोड़कर और

झुकाकर 'निसीहि' तक पाठ पढ़ें तथा यदि गुरुदेव हों, तो निसीहि उच्चारण के साथ उनकी चारों ओर की देहप्रमाण ३।। हाथ भूमि में प्रवेश करें। फिर दोनों घुटनों के बल बैठकर दोनों घुटनों के बीच दोनों हाथों को जोड़ें। यों गर्भस्थ शिशु के समान विनीत यथासन में बैठकर 'अ' का उच्चारण मन्द स्वर में करते हुए दोनों हाथों को लम्बा करके गुरु चरणों को कलाईंमानों में पहुँचें—इस प्रकार विवेक से गुरु के चरणों का स्पर्श करें। यदि गुरुदेव न हों, तो चरण-स्पर्श की भावना करते हुए भूमिस्पर्श करें। फिर 'हो' का उच्च स्वर से उच्चारण करते हुए दोनों हाथों से अपने शिर का स्पर्श करें। इसी प्रकार 'का—य' तथा 'का—य' में उच्चारण और चरण-शिर स्पर्श करें। 'सफास' कहते हुए गुरु के चरणों में मस्तक का भी स्पर्श करें। इस प्रकार तीन आवर्तन और एक शिर का झुकाव हुआ।

उसके पश्चात् 'खमणिज्जो' से 'दिवसो वइक्कंतो' तक सामान्यतया पाठ पढ़ें। फिर १. ज-त्ता-भे, २. ज-व-णि, ३. ज्ज-च-भे, में इन तीन अक्षर-समूह में से पहले-पहले अक्षर का पहले के समान मन्द स्वर से उच्चारण करते हुए गुरु-चरण स्पर्श करें। दूसरे-दूसरे अक्षर का मध्यम स्वर से उच्चारण करते हुए हाथों को भूमि और शिर के बहुमध्य में पल भर रोकें। फिर तीसरे-तीसरे अक्षर का उच्चस्वर से उच्चारण करते हुए स्वयं का शिर स्पर्श करें। पश्चात् गुरु के चरणों में मस्तक झुकावें। यों दूसरे तीन आवर्तन और दूसरा शिर का झुकाव हुआ।

उसके पश्चात् 'खामेमि' से 'पडिक्कमामि' पाठ सामान्यतया पढ़ें। 'आवस्सियाए पडिक्कमामि' कहते हुए ख हो जायें

अहो-काय	: आपके (दोनों) चरणों का मैं अपने
काय-संफासं	मस्तक और हाथों से स्पर्श करता हूँ।
खमणिज्जो, भे	क्षमा करें, जो आपको
किलामो	: (मेरे स्पर्श से) क्लामना हुई।
अप्पकिलंताणं	: बिना देहग्लानि रहे
१. बहु सुभेण	: बहुत शुभ (संयमी क्रियाओं) से
भे दिवसो वइक्कंतो*	: आपका दिन बीता ?
२. जत्ता भे ?	आपकी (संयम) यात्रा (निर्बाध) है ?
३. जवणिज्जं च भे ?	और आपका शरीर व इन्द्रियाँ स्वस्थ है ?
खामेमि	: खमाता हूँ (क्षमा-याचना करता हूँ)
खमासमणो	हे क्षमा-श्रमण !
देवसिअं वइक्कमं	. दिन सम्बन्धी अपराध को।
आवस्सियाए	: आवश्यक क्रिया करने में जो भी विपरीत अनुष्ठान हुआ हो उससे
पडिक्कमामि	: निवृत्त होता हूँ।

आशातना की क्षमा-याचना व प्रतिक्रमण

खमासमणाणं	: आप क्षमा-श्रमण की
देवसियाए	: दिन सम्बन्धी
आसायणाए	: आशातना द्वारा

* रात्रि प्रतिक्रमण में 'राइवइक्कंतो' पाक्षिक 'प्रतिक्रमण' में 'दिवसो पक्खो वइक्कंतो', चातुर्मासिक प्रतिक्रमण में एकबार 'दिवसो वइक्कंतं' चाउम्मासं' वइक्कंतं दो बारे दूसरे में मात्र 'चाउम्मासं वइक्कंतो' सांवत्सरिक प्रतिक्रमण में एक बारे दिवसो संवच्छरो वइक्कंतो तथा दो बारे दूसरे में मात्र 'संवच्छरो वइक्कंतो' कहें।

यद्यपि हमारे सामने प्रत्यक्ष ही एक दूसरा तिर्यञ्च लोक और कर्मों के फल-रूप जीवों की विभिन्नता तो विद्यमान है ही, फिर भी यदि किन्हीं को परलोक के अस्तित्व पर और कर्मवाद पर विश्वास न हो, तो उनके लिए भी स्थूल अहिंसा, स्थूल सत्य, स्थूल अचौर्य, स्थूल ब्रह्मचर्य और परिग्रह परिमाण आदि लाभदायी हैं ही। जिस लोकनीति या राजनीति में इनका समावेश नहीं होता, वे लोकनीतियां तथा राजनीतियां इस लोक का सुख नहीं दे पाती। युद्ध, अविश्वास, चोरी, बलात्कार और विषम सामाजिक स्थिति आदि के दुःख और भय को दूर करने के लिए लोकनीति और राज्यनीति में भी स्थूल अहिंसा आदि की आवश्यकता है ही। अतः जो प्राणी इहलौकिक सुख चाहते हैं, उनके लिए भी धर्मक्रिया आवश्यक है।

भगवान महावीर ने अपना धर्म मुख्यतः मोक्ष-प्राप्ति के लिए ही प्रकट किया और मोक्ष-प्राप्ति के लिए धर्म करने वालों को ही धार्मिक माना है, परन्तु भगवान् ने, जो लोग पारलौकिक या इहलौकिक भौतिक सुख चाहते हैं, उनको भी आह्वान किया है कि प्राणियो! 'जिस हिंसा आदि अधर्म से आप सुख पाना चाहते हो, वह आपको सुख नहीं दे सकता। अतः आप धर्म की शरण आओ! वह आपको इच्छित सुख देगा!'

मेरा पाठकों से आग्रह है कि—'वे आगामी चौथा आवश्यक का अध्ययन तो करें ही, साथ ही, धर्म के वास्तविक उद्देश्य को समझकर धर्म को स्वीकार भी करें।'

...न धर्म के वास्तविक उद्देश्य को न समझ सकें, तो ...लौकिक या इहलौकिक सुख के लिए सही,

मिथ्यात्व को दूर करता है सम्यक्चारित्र राग-द्वेष को नष्ट करता है और सम्यक्तप कर्म-बन्धन को तोड़ता है। कर्म-बन्धन के सर्वथा क्षय से तत्काल आत्मा देह से पृथक् हो जाती है और उस दुःख मूल देह से पृथक् होकर अनंत और एकांत सुखमय मोक्ष को प्राप्त कर लेती है।

इसीलिए जो भी प्राणी दुःख का नाश करके अनंत सुख और एकांत सुख चाहते हैं, उनके लिए धर्म आवश्यक है। उसी धर्म का ही आगामी चौथे आवश्यक में वर्णन किया जायेगा।

मोक्ष अनंत सुखमय कैसे है और एकांत सुखमय कैसे है?—यह बता देना अधिकृत. वाणी से परे की बात है। फिर भी जिनेश्वरों ने उपमा आदि के द्वारा उसके सम्बन्ध में पर्याप्त प्रकाश दिया है। इतना होते हुए भी यदि किन्हीं को मोक्ष-सुख समझ में न आवे और वे भौतिक सुख में ही सुखानुभव करें, तो उनके लिए भी धर्म क्रिया लाभदायी ही है। क्योंकि वह ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्मों को दूर करके ज्ञान-शक्ति देती है। असाता वेदनीय को दूर करके विषय-सुख और मन-वचन-काया के सुख देती है। मोहनीय को मन्द करके पुरुषत्व देती है। अशुभ आयुष्य दूर करके शुभ और दीर्घ आयुष्य (जीवन) देती है। अशुभ नाम दूर करके श्रेष्ठ शरीर देती है। अशुभ गोत्र दूर करके धनादि-ऐश्वर्य प्रदान करती है और अन्तराय दूर करके ऐश्वर्यादि की प्राप्ति में आने वाली बाधाओं को दूर करती है। धर्मक्रिया के प्रताप से आत्मा भावी जन्म में इन्द्र और चक्रवर्ती आदि के सुख प्राप्त करती है। इस प्रकार जो प्राणी भौतिक सुख चाहते हैं, उनके लिए भी धर्म की क्रिया आवश्यक है।

यद्यपि हमारे सामने प्रत्यक्ष ही एक दूसरा तिर्यञ्च लोक और कर्मों के फल-रूप जीवो की विभिन्नता तो विद्यमान है ही, फिर भी यदि किन्ही को परलोक के अस्तित्व पर और कर्मवाद पर विश्वास न हो, तो उनके लिए भी स्थूल अहिंसा, स्थूल सत्य, स्थूल अचौर्य, स्थूल ब्रह्मचर्य और परिग्रह परिमाण आदि लाभदायी हैं ही। जिस लोकनीति या राजनीति में इनका समावेश नही होता, वे लोकनीतिया तथा राजनीतियां इस लोक का सुख नही दे पाती। युद्ध, अविश्वास, चोरी, बलात्कार और विषम सामाजिक स्थिति आदि के दुःख और भय को दूर करने के लिए लोकनीति और राज्यनीति में भी स्थूल अहिंसा आदि की आवश्यकता है ही। अतः जो प्राणी इहलौकिक सुख चाहते हैं, उनके लिए भी धर्मक्रिया आवश्यक है।

भगवान महावीर ने अपना धर्म मुख्यतः मोक्ष-प्राप्ति के लिए ही प्रकट किया और मोक्ष-प्राप्ति के लिए धर्म करने वालों को ही धार्मिक माना है, परन्तु भगवान् ने, जो लोग पारलौकिक या इहलौकिक भौतिक सुख चाहते हैं, उनको भी आह्वान किया है कि प्राणियो ! "जिस हिंसा आदि अधर्म से आप सुख पाना चाहते हो, वह आपको सुख नही दे सकता। अतः आप धर्म की शरण आओ ! वह आपको इच्छित सुख देगा !"

मेरा पाठकों से आग्रह है कि—'वे आगामी चौथा आवश्यक का अध्ययन तो करें ही, साथ ही, धर्म के वास्तविक उद्देश्य को समझकर धर्म को स्वीकार भी करें।'

यदि आप धर्म के वास्तविक उद्देश्य को न समझ सकें, तो भी आप चाहे पारलौकिक या इहलौकिक सुख के लिए

आपकी जितनी रुचि हो, जैसी योग्यता हो और जैसी परिस्थिति हो, उतना ही सही, परन्तु धर्म अवश्य स्वीकार करें।

इसके साथ ही कुछ बातें और लिख दूँ— १. जो धर्म वास्तविक उद्देश्य को लेकर चलते हैं, वे भी मोक्षप्राप्ति के मध्यकाल में पारलौकिक सुख भी अवश्य ही प्राप्त करते हैं तथा इहलोक में भी प्रायः उन्हें शान्ति उपलब्ध होती है। २. धर्म प्रारम्भ करते ही अज्ञान और राग-द्वेषजन्य दुःख में तो तत्काल कमी आ जाती है, पर भौतिक सुख तत्काल उपलब्ध होना नियमित नहीं है, क्योंकि जितने भी भौतिक सुख हैं, उनकी प्राप्ति के पुरुषार्थ में प्रायः पहले अपनी भौतिक सुख की पूँजी लगानी पड़ती है और कालान्तर में कहीं अधिक भौतिक सुख मिलता है। अतः भौतिक सुखदृष्टा को धर्म को धैर्य के साथ पालना आवश्यक है। ३. यह गाँठ बाँध रख लेना चाहिए कि—यदि इस मानव-भव में धर्माराधन नहीं किया, तो अन्य भवों में धर्म प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ है। सम्पूर्ण चारित्र तो मानवभव से अन्य किसी योनि में नहीं मिल सकता। देश चारित्र भी मानव (और कुछ पशु, जो प्रायः पहले धर्म पाल चुके हैं, उन्हें छोड़कर) अन्य को नहीं मिलता। सम्यग्ज्ञान व दर्शन भी संज्ञी-पञ्चेन्द्रिय को छोड़कर अन्य को उपलब्ध नहीं होता। अतः धर्म में थोड़ा भी प्रमाद करना श्रेयस्कर नहीं है।

सूक्त— १. अहिंसा संयम और तप रूप धर्म ही श्रेष्ठ मंगल है। जिसका मन धर्म से सदा ही अनुरक्त रहता है, उसे (मनुष्य तो क्या) देव भी नमस्कार करते हैं। २. शुद्ध हृदय वाले प्राणी में ही धर्म स्थिर रहता है। ३. देह छोड़ दो, पर धर्म शासन को मत छोड़ो।

४. विषयभोग मे सतत मूढ बने हुए प्राणी धर्म को नही जान सकते ।

——

चौथा आवश्यक

विधि : तीसरे आवश्यक की समाप्ति पर वंदना करके 'पहला सामायिक, दूसरा चतुर्विंशतिस्तव तथा तीसरी वंदना—ये तीन आवश्यक पूरे हुए, चौथे प्रतिक्रमण आवश्यक की आज्ञा है।' कहकर चौथे आवश्यक की आज्ञा लें। आज्ञा लेकर 'श्रावक सूत्र' पढने वाले खडे-खड़े निम्न 'आगमे तिविहे' से लेकर 'संलेखना' तक १५ पाठ व्रत अश वाले छोड़कर अतिचार और प्रतिक्रमण अश वाले पाठ पढ़ें। 'श्रमणसूत्र' पढने वाले आगमे तिविहे से १२ वें अणुव्रत तक १४ पाठ सपूर्ण खड़े-खड़े कहें और सलेखना का पाठ बैठकर सम्पूर्ण कहे।

४. 'आगमे तिविहे' 'ज्ञान का पाठ'

आगमे	: आगम
तिविहे पण्णत्ते	: तीन प्रकार का कहा है।
तजहा	: वह इस प्रकार—
१. सुत्तागमे	: सूत्र (रूप) आगम

भणतां : वाचना, पृच्छना और धर्म कथा करते हुए

गुणतां विचारतां : परिवर्तना करते (फेरते) हुए तथा अनुप्रेक्षा (चिन्तन) करते हुए,

ज्ञान और ज्ञानवन्त पुरुषों की अविनय आशातना की हो, तो

प्रतिक्रमण पाठ

तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

'आगमे तिविहे' प्रश्नोत्तरी

प्र. : आगम किसे कहते हैं?
उ. : जिनसे जीवादि नव तत्वों का सम्यग्ज्ञान हो।

प्र. : सूत्रागम किसे कहते हैं?
उ. : तीर्थंकरों ने अपने श्रीमुख से जो भाव कहे, उन्हें अपने कानों से सुनकर गणधरों ने जिन आचारांग आदि आगमों की रचना की, उस शब्दरूप आगम को।

प्र. : अर्थागम किसे कहते हैं?
उ. : तीर्थंकरों ने अपने श्रीमुख से जो भाव प्रकट किये उस भावरूप आगम को।

प्र. : व्याविद्ध पढ़ना किसे कहते हैं?
उ. : सूत्र को तोड़कर मणियों के [illegible]

५ 'अरिहतो-महदेवो' दर्शन (सम्यक्त्व) का पाठ

१. अरिहतो महदेवो	: (अरिहन्त मेरे देव हैं।
जावज्जीवाए	: (और) जब तक जीवन है
२. सुसाहुणो गुरुणो	. सच्चे साधु गुरु हैं।
जिण पण्णत्त	: अरिहत द्वारा कहा हुआ
तत	: तत्त्व (उपदेश, धर्म) है।
इग्र सम्मत्त	. इस प्रकार सम्यक्त्व
मए गहिय) ॥१॥	: मैंने ग्रहण की है।)
१. परमत्थ	: परमार्थ का नव तत्वो का)
सथवो वा	: सस्तव (ज्ञान) करना
२. सुदिट्ठ-परमत्थ	. परमार्थ (नव तत्व) के अच्छे जानकारो की
सेवणा वावि	: सेवा (प्रशसा-परिचय) करना
३. वावण्ण	: व्यापन्न [सम्यक्त्व भ्रष्ट] और
४. कुदंसण	: कुदर्शन [अन्यमति] की
वज्जणा य	: संगति [प्रशंसा-परिचय] वर्जना
सम्मत्त	: ये चार कार्य सम्यक्त्व के
सद्दहणा ॥२॥	: श्रद्धान [दर्शक,उत्पादक व रक्षक]है।

अतिचार पाठ

...म्मत्तस्स	इस प्रकार श्री समकित रत्न पदार्थ के विषय में

उ. : अशुद्धि आदि मे स्वाध्याय करने से ज्ञान के प्रति अनादर होता है, लोकनिन्दा होती है। विषम समय में स्वाध्याय से देवकोपादि हानि होती है। अतः ये अतिचार भी हेय हैं।

प्र. . 'स्वाध्याय करूँगा' इत्यादि व्रत-प्रत्याख्यान लिए बिना 'काल मे स्वाध्याय न किया हो' आदि अतिचार लगते ही नही, तब उनका प्रतिक्रमण क्यों किया जाय ?

उ. . प्रतिक्रमण केवल अतिचार-शुद्धि के लिए ही नहीं, वरन् अतिचारों के ज्ञान, उनके सम्बन्ध में शुद्ध श्रद्धा, उन्हें टालने की भावना आदि के लिए भी किया जाता है—यह प्रवेश प्रश्नोत्तरों मे विस्तार से बताया जा चुका है। मुख्य रूप से यह पुनः दुहराया जाता है कि जैसे 'मैं चोरी नही करूँगा' इस व्रत को लेने पर, जैसे चोरी करने से पाप लगता है, वैसे ही चोरी का व्रत न लेने वाले को भी चोरी करने पर पाप लगता ही है—भले ही वह व्रत के अतिचार रूप से न लगे। वह पाप से मुक्त नहीं रहता। अतः जैसे व्रत धारी और अव्रती दोनों को चोरी के पाप का प्रतिक्रमण करना आवश्यक है, वैसे ही स्वाध्याय आदि का नियम न लेने वाले को भी कालस्वाध्याय आदि न करने का प्रतिक्रमण करना ही चाहिये। क्योंकि उसे भी काल-स्वाध्याय न करने आदि का पाप लगता ही है। यह ऊपर उन सभी अतिचारों के लिए समझना चाहिए, जिनके सम्बन्ध में उपर्युक्त प्रश्न उठता हो।

प्रत्याख्यान—

५ 'अरिहंतो-महदेवो' दर्शन (सम्यक्त्व) का पाठ

१. अरिहंतो महदेवो	: (अरिहन्त मेरे देव हैं।
जावज्जीवाए	: (और) जब तक जीवन है,
२. सुसाहुणो गुरुणो	: अच्छे साधु गुरु हैं।
जिणपण्णत्तं	: अरिहन्त द्वारा कहा हुआ
तत्तं	: तत्त्व (उपदेश, धर्म) है।
इय सम्मत्तं	: इस प्रकार सम्यक्त्व
मए गहियं ॥१॥	: मैंने ग्रहण की है।)
१. परमत्थ	: परमार्थ का (नव तत्त्वों का)
संथवो वा	: संस्तव (ज्ञान) करना
२. सुदिट्ठ-परमत्थ	: परमार्थ (नव तत्त्व) के अच्छे जानकारों की
सेवणा वावि	: सेवा (प्रशंसा-परिचय) करना
३. वावण्ण	: व्यापन्न [सम्यक्त्व भ्रष्ट] और
४. कुदंसण	: कुदर्शन [अन्यमति] की
वज्जणा य	: संगति [प्रशंसा-परिचय] वर्जना
सम्मत्त	: ये चार कार्य सम्यक्त्व के
सद्दहणा ॥२॥	: श्रद्धान [दर्शक,उत्पादक व रक्षक]है।

अतिचार पाठ

इस सम्मत्तस्स	इस प्रकार श्री सम्यक्त्व रत्न के विषय में

पच अइयारा पेयाला	: [पाँच प्रधान अतिचार
जाणियव्वा	: जो जानने योग्य हैं, किन्तु
न समायरियव्वा	: आचरण करने योग्य नहीं हैं।
तजहा	: वे इस प्रकार है—उनमें से]
ते आलोउ	: जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउ —
१. सका	: श्री जिन-वचन मे शका की हो,
२. कखा	: पर-दर्शन की आकांक्षा की हो,
३. वितिगिच्छा	: धर्म के फल मे सदेह किया हो, (या त्याग-वृत्ति के कारण शरीर-वस्त्र-पात्र आदि मलिन देख कर सत-सतियों से घृणा की हो)
४. परपासंड-पसंसा	: पर-पाखण्डी [अन्य मती] की प्रशंसा की हो,
५. परपासंड-सथवो	: पर-पाखण्डी का परिचय किया हो

प्रतिक्रमण पाठ

जो मे देवसिओ	: मेरे सम्यक्त्व-रूप रत्न पर [दिन
अइयारो कओ	: सम्बन्धी] मिथ्यात्व-रूपी रज मैल, लगा हो, तो

तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

'अरिहंतो महदेवो' प्रश्नोत्तरी

प्र. : तत्वज्ञान और तत्वज्ञानियों की सेवा क्यों करनी चाहिए?

उ. : इसलिए कि ये दोनों बोल १. नूतन ज्ञान-प्राप्ति, २. प्राचीन सदेह-निवारण, ३ सत्यासत्य निर्णय, ४. अतिचार-शुद्धि

और ४. भय प्रेरणा आदि करके हमारे सम्यग्ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप को दृढ़, शुद्ध और सम बनाते हैं।

प्र. सम्यक्त्व-भ्रष्ट की और अन्यमती की संगति आदि क्यों छोड़नी चाहिए ?

उ. इसलिए कि—'ये दोनों योग सम्यग्ज्ञानादि की हानि करते हैं, क्योंकि जो स्वयं सम्यक्त्वादि से भ्रष्ट होता है उसकी संगति करने पर वह दूसरे को भी सम्यक्त्वादि से गिराता है और जिसको मिथ्यादृष्टि होती है, उसकी संगति करने पर वह दूसरों को भी मिथ्यादृष्टि बनाता है।

प्र. : क्या इनका परिचय सबको छोड़ना चाहिए ?

उ. : नहीं, जो ज्ञानादि में परिपक्व हो, वह सम्यक्त्वादि में लाने के लिए भ्रष्ट और मिथ्यात्वी को अपने परिचय में लावे, तो कोई बाधा नहीं है।

प्र. जिन-वचन में शंका क्यों होती है और उसे कैसे दूर करनी चाहिए ?

उ. : श्री जिन-वचन में कई स्थानों पर सूक्ष्म तत्वों का विवेचन हुआ है, कई स्थानों पर नय और निक्षेप के आधार पर वर्णन हुआ है। वह स्थूल बुद्धि से समझ में न आने के कारण शंका हो जाती है कि—'ये वचन सत्य कैसे हो सकते हैं।' तब अरिहंतों के केवल ज्ञान और वीतरागता का विचार करके तथा अपनी बुद्धि की मन्दता का विचार करके ऐसी शंका दूर करनी चाहिये।

प्र. : क्या जिज्ञासा-रूप शंका अतिचार है ?

उ. : नहीं। पर हाँ, उसका भी ज्ञानियों से शीघ्र

उ.: अपनी और अपनी संतान और इसी प्रकार जिनका विवाह करने का कार्यभार स्वयं पर आ पड़ा हो, उनके अतिरिक्त दूसरों का विवाह करना, इसी प्रकार विधवा-विवाह कराना, वर्त्तमान पत्नी उपरान्त अन्य विवाह का त्याग होने पर अन्य स्त्री से विवाह करना। अपने पुत्रादि का एक बार विवाह करके फिर विवाह करने का त्याग ले लेने के पश्चात् उनका विवाह करना। जिस कन्या का पर-पुरुष के साथ विवाह हो रहा हो उसके साथ स्वयं विवाह कर लेना आदि।

प्र. कामभोग की तीव्र अभिलाषा में और क्या सम्मिलित हैं?

उ.: विशेष कामभोग की भावना से वाजीकरण, वीर्य-वर्धन करना आदि।

---

१. खेत्त-वत्थुप्पमाणाइक्कमे : क्षेत्र वस्तु के परिमाण का अतिक्रमण किया हो,

२. हिरण्ण-सुवण्णप्पमाणाइक्कमे : हिरण्य-सुवर्ण के परिमाण का अतिक्रमण किया हो,

३. धण-धण्णप्पमाणाइक्कमे : धन-धान्य के परिमाण का अतिक्रमण किया हो,

४. दुपय-चउप्पयप्पमाणाइक्कमे : दो पद, चौपद के परिमाण का अतिक्रमण किया हो,

५. कुवियप्पमाणाइक्कमे : कुविय धातु के परिमाण का अतिक्रमण किया हो,

जो मे देवसिओ अइयारो कओ : इन अतिचारों में से मुझे जो कोई दिन सम्बन्धी अतिचार लगा हो, तो

तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

'अपरिग्रह अणुव्रत' प्रश्नोत्तरी

प्र. : स्थूल अपरिग्रह विरमण कितने प्रकार का है?

उ. : तीन प्रकार का है। १. 'जितना परिग्रह वर्तमान में स्वयं के पास है, उसमें ड्यौढ़े-दूने आदि से अधिक परिग्रह नहीं रखूंगा। यदि उससे अधिक प्राप्त भी हुआ, तो मैं ग्रहण नहीं करूँगा या धर्म आदि में व्यय कर दूँगा।' आदि रूप में विरमण करना जघन्य (निम्न प्रकार) का स्थूल परिग्रह विरमण है। २. जितना पास में है, उससे अधिक का विरमण करना मध्यम प्रकार का विरमण है। ३ जितना पास में है, उसमें भी घटा कर विरमण करना उत्तम प्रकार का विरमण है। शीघ्र मोक्षार्थी को उत्तम प्रकार का

आकाश में ऊपर नहीं उड़ूंगा । २. ---- इतने हाथ से अधिक गहरे कुए, खान आदि में नहीं जाऊंगा । पूर्व में ---------- इतने कोस या मीटर से आगे, पश्चिम में ------ इतने से आगे, उत्तर में ------ इतने से आगे और दक्षिण में ------- इतने से आगे नहीं जाऊंगा । भूमि की स्वत ऊंचाई-नीचाई का आगार ।

प्र. : क्षेत्र-वृद्धि क्यों की जाती है ?

उ. : 'पूर्वादि दिशा की मर्यादित भूमि में आधी भूमि में भी मुझे जाना नहीं पड़ता और पश्चिमादि भूमि में मर्यादित भूमि से अधिक भूमि मे जाना मुझे धनादि की दृष्टि से लाभप्रद है' इत्यादि सोचकर ।

प्र. : दिशाव्रत से मर्यादित क्षेत्र के बाहर कौनसे पांच आश्रव रुकते हैं ?

उ. : जो पहले के पांच अणुव्रत धारण करके पश्चात् छठा व्रत धारण करता है, उसके १. हिंसा, २. झूठ, ३ चोरी, ४. मैथुन और ५. परिग्रह—ये पांच आश्रव, जो सूक्ष्म रूप से शेष रहे हैं, वे रुकते हैं तथा जिसने पहले अणुव्रत धारण किये बिना छठा अणुव्रत धारण किया है, उसे ये पांचों आश्रव स्थूल और सूक्ष्म व सर्व प्रकार से रुकते हैं ।

---

१२. 'उपभोग परिभोग व्रत' व्रत पाठ

क बार ही भोगा जा सके,

आकाश मे ऊपर नही उड़ूगा। २. ... इतने हाथ से अधिक गहरे कुए, खान आदि मे नही जाऊगा। पूर्व मे .... इतने कोस या मीटर से आगे, पश्चिम में .... इतने से आगे, उत्तर मे ......—इतने से आगे और दक्षिण मे .... इतने से आगे नही जाऊगा। भूमि की स्वत ऊचाई-नीचाई का आगार।

प्र.: क्षेत्र-वृद्धि क्यो की जाती है ?

उ 'पूर्वादि दिशा की मर्यादित भूमि से आधी भूमि में भी मुझे जाना नही पडता और पश्चिमादि भूमि मे मर्यादित भूमि मे अधिक भूमि मे जाना मुझे धनादि की दृष्टि से लाभप्रद है' इत्यादि सोचकर।

प्र.: दिशाव्रत से मर्यादित क्षेत्र के बाहर कौनसे पाच आश्रव रुकते हैं ?

उ. जो पहले के पाच अणुव्रत धारण करके पश्चात् छठा व्रत धारण करता है, उसके १. हिंसा, २ झूठ, ३ चोरी, ४. मैथुन और ५. परिग्रह—ये पाच आश्रव, जो सूक्ष्म रूप से शेष रहे हैं, वे रुकते हैं तथा जिसने पहले अणुव्रत धारण किये बिना छठा अणुव्रत धारण किया है, उसे ये पाचो आश्रव स्थूल और सूक्ष्म व सर्व प्रकार से रुकते हैं।

---

१२. 'उपभोग परिभोग व्रत' व्रत पाठ

सातवां व्रत

उपभोग : उपभोग (एक बार ही भोगा जा सके, जैसे अन्न)

परिभोग	. परिभोग (अनेक बार भोगा जा सके, जैसे वस्त्र)
विहि	. विधि का (ऐसे पदार्थों की जाति का
पच्चक्खमा रमाणे	. प्रत्याख्यान करते हुए (सख्या, भार वार, आदि से)
१. उल्लणिया-विहि	: (पोछने के) अंगोछे की वि (जाति)
२. दतण-विहि	· दतौन की विधि
३. फल-विहि	. (केशादि के उपयोग) फल की वि.-
४. अब्भगण-विहि	. अभ्यगन (योग्य तैलादि) की विधि
५ उव्वट्टण-विहि	· उवटन योग्य पीठी आदि) की विधि
६ मज्जण-विहि	. स्नान (योग्य जल) की विधि
७. वत्थ-विहि	(पहनने योग्य) वस्त्र की विधि
८. विलेवण-विहि	: विलेपन (योग्य चन्दन आदि) की विधि,
९. पुप्फ-विहि	: फूल (तथा फूलमाला आदि) की विधि
१०. आभरण-विहि	: (अगूठी आदि) आभरण की विधि
११. धूव-विहि	: (अगर तगरादि) धूप की विधि

भोजन मे काम आने वाले

१२. पेज्ज-विहि	: (दूध आदि) पेय की,विधि
१३. भक्खण-विहि	: (घेवर आदि) मिठाई की विधि
१४. ओदण-विहि	: (राधे हुए) ओदन (चावल आदि) की विधि
५. सूप-विहि	(मूग, चना आदि) सूप (दाल) की विधि

१६. विगय-विहि	: (दूध-दही आदि) विकृति की विधि
१७. साग-विहि	: (भिण्डी आदि सूखे या हरे) शाक की विधि
१८. महुर-विहि	: (सूखे हरे) मधुर (फल) की विधि
१९. जीमण-विहि	(रोटी, पूरी आदि) जीमने के द्रव्यों की विधि
२०. पाणीय-विहि	: (पीने योग्य) पानी की विधि
२१. मुखवास-विहि	. (लोंग, सुपारी आदि) मुखवास विधि
२२. वाहण-विहि	. (घोड़ा, मोटर आदि) वाहन की विधि
२३. उवाणह-विहि	: जूते, मौजे आदि की विधि
२४. सयण-विहि	: (सोने, बैठने योग्य) वस्त्र पलगादि की विधि
२५. सचित्त-विहि	: (नमक पानी आदि) सचित्त की विधि
२६. दव्व-विहि	: (भिन्न नाम व स्वाद वाले) पदार्थों की विधि
इत्यादि का यथा परिमाण किया है	: तथा घडी,पाश आदि शेष रहे हुए द्रव्यों का परिमाण करता हूँ

इसके उपरान्त उपभोग परिभोग वस्तुओं को भोग निमित्त से भोगने का पच्चक्खाण (करता हूँ) जावज्जीवाए। एगविहं, तिविहेण, न करेमि, मणसा वयसा कायसा।

अतिचार पाठ

ऐसा सातवा उपभोग परिभोग	: सातवाँ उपभोग परिभोग
दुविहे, पण्णत्ते	: दो प्रकार का कहा गया है

तंजहा—ते आलोउ	: उनके विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो, आलोउ—
१ इगालकम्मे	: अगार का काम किया हो,
२. वणकम्मे	: वन का काम किया हो,
३. साडीकम्मे	: गाडी आदि का काम किया हो,
४. भाडीकम्मे	: भाडे का काम किया हो,
५. फोडीकम्मे	: फोडने का काम किया हो,
६. दंत वाणिज्जे	: दाँत आदि का वाणिज्य किया हो,
७. लक्खवाणिज्जे	: लाख आदि का वाणिज्य किया हो,
८. रस-वाणिज्जे	: रस का वाणिज्य किया हो,
९. विस-वाणिज्जे	: विष आदि का वाणिज्य किया हो,
१०. केस-वाणिज्जे	: केश वालों का वाणिज्य किया हो,
११. जंत-पीलण-कम्मे	: यन्त्रों का काम किया हो,
१२. निल्लछण-कम्मे	: नपु सक बनाने का काम किया हो,
१३. दवग्गि-दावणया	: खेतादि में आग लगाई हो,
१४. सर-दह-तलाय-सोसणया	: सरोवर, द्रह, तालाब आदि सुखाये हों,
१५. असई-जण पोसणया	: वेश्या आदि का पोषण किया हो,
जो मे देवसिओ अइयारो कओ	: इन अतिचारों में से मुझे जो कोई दिन सम्बन्धी अतिचार लगा हो, तो

तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

'उपभोग-परिभोग व्रत' प्रश्नोत्तरी

प्र. · जब सचित्त को पका कर खाने में अचित्त हिंसा तो होती ही है, पकाने से अग्नि और उसमें रहे.

है, जैसे रोटी, सहज निष्पन्न धोवन, स्नानार्थ बना शेष बचा गरम जल आदि । यदि विवेक रखा जाय, तो सचित्त का त्यागी सर्व आरम्भ का त्याग कर सहज निष्पन्न, अचित्त और पक्व पदार्थों से काम चला सकता है ।

प्र. : सचित्त त्याग के अन्य लाभ बताइए ।

उ. : १. स्वाद विजय, २. जहाँ अचित्त बनाकर खाने की सुविधा न हो, वहाँ सन्तोष, ३. तरबूजा आदि अधिकांश पदार्थ, जिन्हें पकाकर नहीं खाये जाते उनका सर्वथा त्याग, ४. पर्व-तिथियों को घर में आरम्भ कम होना (हरी त्याग की दृष्टि से)। इत्यादि कई लाभ हैं। स्वास्थ्य की दृष्टि से पक्व खानेवाले को रोग कम होता है ।

प्र. : 'सचित्ताहारे' आदि पाँच अतिचारों से क्या समझना चाहिए ?

उ. : उपभोग-परिभोग सम्बन्धी जितनी भी भोगों की मर्यादा की हो, उसके अतिक्रमण के भी सभी अतिचार समझने चाहिए ।

प्र. : कर्मादान किसे कहते हैं ?

उ. : जिससे ज्ञानावरणीयादि कर्मों का अधिक बन्ध हो, ऐसे कार्य या व्यापार को ।

प्र. : १. इंगाल-कम्मे (अंगार कर्म) किसे कहते हैं ?

उ. : जिसमें अग्निकाय का, इसके अतिरिक्त छहों और त्रस काय के जीवों का महारम्भ हो, [illegible] को । जैसे कोयला, ईंट आदि बना कर बेचना

उत्पादन करके बेचना, लुहार, सुनार, भड़भूंजे आदि का काम करना।

प्र : २. वणकम्मे (वनकर्म) किसे कहते हैं ?

उ : जिसमें वनस्पतिकाय का और उसके आश्रित त्रस जीवों का महारम्भ हो, ऐसे काम को। जैसे वनों का ठेका लेकर वृक्षादि काट कर बेचना, वृक्ष, फल, फूल, पत्ते हरी घास आदि काट कर बेचना, दालें बनाना, आटा पीसना, चावल निकालना आदि।

प्र : ३. साडीकम्मे (शकट कर्म) किसे कहते हैं ?

उ. : यन्त्रों के काम को। जैसे गाड़ी आदि वाहन के, हलादि खेती के, चर्खे आदि उत्पादन के, इत्यादि प्रकार के यन्त्रों को बनाना, खरीदना, बेचना।

प्र. : ४. भाडीकम्मे (भाटीकर्म) के उदाहरण दीजिए।

उ. : जैसे दासादि मनुष्य, बैलादि पशु, घर, यन्त्र आदि भाड़ा लेकर देना। भाड़े के लिए घर आदि बनाना, भाड़ा लेकर माल का स्थानान्तरण करना आदि।

प्र. : ५. फोडी कम्मे (स्फोटी कर्म) किसे कहते है ?

उ. : जिसमें पृथ्वीकाय का और उसके आश्रित जीवों का महारंभ हो—ऐसे काम को। जैसे हल से भूमि फोड़ना (खेती करना), कुदालादि से मिट्टी, पत्थर, लोहा, आदि निकालना पत्थर आदि घड़ना, जलाशय के लिए या पेट्रोल आदि के लिए या सड़कें बनाने के लिए पृथ्वी खोदना आदि।

प्र. : ६. दंत वाणिज्जे (दन्तवाणिज्य) किसे कहते हैं ?

उ. : त्रसकायिक जीवों के अवयवों का व्यापार करने को। जैसे दाँत, शंख, केश, चमडा आदि खरीदना-बेचना।

प्र. : ७. लक्खवाणिज्जे (लाक्षा वाणिज्य) किसे कहते हैं?

उ. : जिसमें त्रस जीवों की बहुत विराधना हो—ऐसा व्यापार करने को। जैसे लाख, चपड़ी, अधिक काल का धान्य आदि का क्रय-विक्रय करना।

प्र. : ८. रसवाणिज्जे (रस वाणिज्य) किसे कहते हैं?

उ. : रसवाले या प्रवाही पदार्थ, जिसमें मद बढ़े व त्रस जीवों की हिंसा आदि हो, उनका क्रय-विक्रय करने को। जैसे मदिरा, मधु, घी, तेल, गुड़, घासलेट, पेट्रोल आदि का क्रय-विक्रय करना।

प्र. : ९. विसवाणिज्जे (विषवाणिज्य) किसे कहते हैं?

उ. : त्रस-स्थावर के घातक पदार्थों का व्यापार करने को। जैसे संख्यादि विष, खड्गादि शस्त्रास्त्र, टिड्डी आदि को मारने वाले पाउडर आदि का क्रय-विक्रय करना।

प्र. : १०. केसवाणिज्जे (केश वाणिज्य) किसे कहते हैं?

उ. : त्रस जीवों का व्यापार करने को। जैसे चमरीगाय, हाथी, गाय, भैंसे, घोड़ा, बैल, आदि पशु, मयूर कबूतर आदि पक्षी, दासादि मनुष्य का क्रय-विक्रय करना।

प्र. : ११. जन्तपीलणकम्मे (यन्त्र-पीड़न कर्म) किसे कहते हैं?

उ. : वनस्पतिकायादि को यन्त्र में पीलने का कामकाम और जिन यन्त्रों को चलाते हुए त्रस जीव भी पिस ऐसे काम को। जैसे कोल्हू घानी, मील आदि में गन्ना रूई आदि पीलना पनचक्की चलाना, मिल चलाना आदि

प्र. : १२. निल्लंछणकम्मे (निर्लाञ्छन कर्म) कहते हैं ?

उ. : मनुष्य, पशु आदि को नपुंसक बनाने क अंगोपांग छेदने का या डाम लगाने का काम करना

प्र. : १३. दवग्गि-दावणया (दवाग्नि दापन कहते है ?

उ. : विशेष और उत्तम खेती के लिए खेत सिंह, सर्पादि विनाश के लिए वन में आग लगाना आदि को।

प्र. : १४. सर-दह-तलाय-सोसणया (सर-द्रह-त शोषणता) किसे कहते हैं ?

उ. : जिसमें अप्काय तथा उनके आश्रित त्रस का महा आरम्भ हो—ऐसे काम को। जैसे सरोवर, द्रह, त आदि जलाशयों का पानी निकाल कर उनकी भूमि में करने के लिए उन्हें सुखाना या आय के लिए उनका नहर आदि से खेत आदि में किसान आदि को बेचना।

प्र. : १५. असईजणपोसणया (असतीजन पोषण किसे कहते हैं ?

उ. : असत् कार्य करने वालों का व्यापारार्थ पोषण क जैसे वेश्यावृत्ति के लिए अनाथ कन्या आदि का पोषण कर

शिकार के लिए शिकारी कुत्तो आदि का पोषण करना। उन्हे शिकारादि के योग्य प्रशिक्षण देना । उनमे वैसे कार्य कराकर आजीविका चलाना या उनका वैसा पोषण-प्रशिक्षण करके उन्हें बेचना । (अनुकम्पा की दृष्टि से किसी का पोषण करना निषिद्ध नही है ।) इस कर्मादान का 'असयति (साधु से अन्य) का पोषण करना ।' यह अर्थ अशुद्ध है ।

प्र. : क्या कर्मादान पन्द्रह ही होते हैं ?

उ. : नही, जो सातवें व्रत में १५ कर्मादान बताये हैं, उनसे दण्डपाल (जेलर का काम), बड़ा जुआ खेलना आदि जितने भी महा आरम्भी काम हैं, वे सब कर्मादान मे समझने चाहिएँ ।

प्र. : जो कुम्हार, सुतार, किसान आदि अङ्गारकर्म आदि करते हैं, क्या वे कर्मादानों की अपेक्षा सातवाँ व्रत नहीं अपना सकते ?

उ. : पन्द्रह कर्मादानों में जो असतिजन-पोषणता आदि अत्यन्त ही निन्दनीय कर्म हैं और स्पष्ट ही त्रसादि जीवों की बड़ी हिंसा के व वेश्या-मैथुन आदि महापाप के कारण है, उन्हें यथासम्भव छोड ही देना चाहिए । शेष जिनमे पृथ्वीकाय आदि स्थावर जीवो की हिंसा हो, उनका परिमाण कर लेना चाहिए । परिमाण करने वाले कुम्हार, किसान आदि कर्मादानों की अपेक्षा भी सातवें व्रतधारी ही माने जाते हैं ।

विशेष धन कमाने की भावना छोड़कर मुख्य रूप से कुटुम्ब निर्वाह आदि की भावना से अत्यन्त [illegible] करने वाले श्रावक कर्मादानी होते हुए भी [illegible] समझे जाते ।

प्र. : पाचवा, छठा और सातवा व्रत प्रायः एक करण तीन योग से क्यो लिये जाते है ?

उ. : क्योंकि श्रावक अपने पास मर्यादा उपरान्त परि... हो जाने पर, जैसे वह उसे धर्म-पुण्य मे व्यय करता है, वैसे ही वह अपनी पुत्री आदि को भी देने का ममत्व त्याग नही पाता।

इसी प्रकार जिसका अब कोई स्वामी नही रह गया है, ऐसा कही गडा हुआ परिग्रह मिल जाय, तो भी वह उसे अपने स्वजनो को देने का ममत्व त्याग नहीं पाता।

अथवा अपने पुत्रादि, जिन्हें परिग्रह बाँटकर पृथक् कर दिया हो, उनके परिग्रह-वृद्धि मे परामर्श देने का उसे प्रसंग आ जाता है।

इसी प्रकार छठे सातवें व्रत की भी स्थिति है। जैसे श्रावक अपनी की हुई दिशा की मर्यादा के उपरांत स्वयं तो नहीं जाता, पर कई बार उसे अपने पुत्र आदि को विदेश व्यापार, विवाह आदि के लिए भेजने का प्रसंग आ जाता है।

ऐसे ही उपभोग परिभोग वस्तुओं की या कर्मादानों की जितनी मर्यादा की है, उसके उपरान्त तो वह स्वयं भोगोपभोग या कर्म नहीं करता, परन्तु उसे अपने पुत्रादि को भोगने के लिए या करने के लिए कहने का अवसर आ जाता है।

इसलिए श्रावक पांचवें, छठे और सातवें व्रत का प्रायः 'मैं नहीं करूंगा' । इतना ही व्रत ले पाता है, परन्तु 'मैं नहीं कराऊंगा'—यों भी व्रत नहीं ले पाता। विशिष्ट श्रावक इन व्रतों का दो करण तीन योग आदि से भी प्रत्याख्यान कर सकते है।

दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा ।*

मनोरथ पाठ*

ऐसी मेरी सद्दहणा	: 'सामायिक का यह स्वरूप है और यह करने योग्य है ?' ऐसी मेरी श्रद्धा है
प्ररूपणा तो है	: अन्य के समक्ष भी ऐसा ही कहता हूँ

सामायिक का अवसर आये सामायिक करूँ तब फरसना (पालन) करके शुद्ध (निर्मल) होऊँ ।

अतिचार पाठ*

ऐसे नववें सामायिक व्रत के पंच—	नववें सामायिक व्रत के विषय
अइयारा जाणियव्वा न—	मे जो कोई अतिचार लगा
समायरियव्वा तंजहा ते—	हो, तो आलोउं—

आलोउ—

१. मण-दुप्पणिहाणे	: मन के अशुभ योग प्रवर्ताये हो ।
२. वय-दुप्पणिहाणे	: वचन ,,
३. काय-दुप्पणिहाणे	: काया ,,
४. सामाइयस्स सइ अकरणया	: सामायिक की स्मृति (कब ली ? आदि) न की हो,

---

*करेमि भन्ते !...... ...४ । दोनों स्थानों पर इतना पाठ और मिला कर इस व्रत पाठ से सामायिक ली जाती है ।

*प्रायः सामायिक लेकर प्रतिक्रमण किया जाता है, अतः उस समय यह मनोरथ पाठ नहीं बोलना चाहिये ।

*इस अतिचार व [illegible] पाठ से सामायिक पाली जाती है ।

या जीवन को सुखमय व्यतीत करने के लिए दूसरा विवाह कर लो [मैथुन], या एक दुकान या एक मिल नई खेती [परिग्रह] इत्यादि'।

प्र. 'संजुत्ताहिगरणे' किसे कहते हैं?

उ. पृथक्-पृथक् स्थानों पर पड़े हुए शस्त्रों के द्वारा जैसे शिला और शिलापुत्र [लोढी], धनुष्य और तीर, बंदूक और गोली—इनको मिला कर एक स्थान पर रखना, या का विशेष संग्रह रखना।

प्र. कन्दर्पादि में कौन कौन से अनर्थदण्ड होते हैं?

उ: कन्दर्प और कौत्कुच्य से अपध्यानाचरण और प्रमादाचरण होता है। मौखर्य से पापकर्मोपदेश हो सकता है। संयुक्ताधिकरण से हिसा प्रदान हो सकता है। उपभोग-परिभोगातिरिक्त से हिंसा प्रदान और प्रमादाचरण होता है।

---

१४. 'सामायिक व्रत' व्रत पाठ

नवमं	: नवमां
सामाइयं वयं।	: समभाव की आय वाला व्रत।
*सावज्जं जोगं	: सावद्य [पापसहित] योग का
पच्चक्खामि	: प्रत्याख्यान करता हूँ।
जावनियमं	: यावत् [एक मुहूर्त आदि] नियम है
पज्जुवासामि	: [इस व्रत का] पालन करता हूँ

दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा।*

मनोरथ पाठ*

ऐसी मेरी सद्दहणा	: 'सामायिक का यह स्वरूप है और यह करने योग्य है ?' ऐसी मेरी श्रद्धा है
प्ररूपणा तो है	: अन्य के समक्ष भी ऐसा ही कहता हूँ

सामायिक का अवसर आये सामायिक करूँ तब फरसना (पालन) करके शुद्ध (निर्मल) होऊँ।

अतिचार पाठ*

ऐसे नववें सामायिक व्रत के पंच—नववें सामायिक व्रत के विषय में अइयारा जाणियव्वा न—मे जो कोई अतिचार लगा समायरियव्वा तजहा ते—हो, तो आलोउं—

आलोउं—

१. मण-दुप्पणिहाणे	: मन के अशुभ योग प्रवर्तायें हों।
२. वय-दुप्पणिहाणे	: वचन ,,
३. काय-दुप्पणिहाणे	: काया ,,
४. सामाइयस्स सइ अकरणया	: सामायिक की स्मृति (कब ली ? आदि) न की हो,

---

*करेमि भन्ते।..... .....४। दोनों स्थानों पर इतना पाठ और मिला कर इस व्रत पाठ से सामायिक ली जाती है।

*प्रायः सामायिक लेकर प्रतिक्रमण किया जाता है, अतः उस समय यह मनोरथ पाठ नहीं बोलना चाहिये।

*इस अतिचार व प्रतिक्रमण पाठ से सामायिक पाली जाती है।

दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा
ायसा ।*

मनोरथ पाठ*

्सी मेरी सद्दहणा	: 'सामायिक का यह स्वरूप है और यह करने योग्य है ?' ऐसी मेरी श्रद्धा है
ारूपणा तो है	: अन्य के समक्ष भी ऐसा ही कहता हूँ

सामायिक का अवसर आये सामायिक करूँ तब फरसना
ालन) करके शुद्ध (निर्मल) होऊँ ।

अतिचार पाठ*

्से नववे सामायिक व्रत के पंच—नववें सामायिक व्रत के विषय
ाडियारा जाणियव्वा न—मैं जो कोई अतिचार लगा
ामायरियव्वा तंजहा ते—हो, तो आलोउं—
ालोउं—

़. मण-दुप्पणिहाणे	: मन के अशुभ योग प्रवर्ताये हों।
़. वय-दुप्पणिहाणे	: वचन ,,
. काय-दुप्पणिहाणे	: काया ,,
. सामाइयस्स सइ	: सामायिक की स्मृति (कब ली ?
ाकरणया	: आदि) न की हो,

रस्स भंते ।····· ·····४। दोनों स्थानों पर इतना पाठ और मिला
र इस व्रत पाठ से सामायिक ली जाती है।
ाय: सामायिक लेकर प्रतिक्रमण किया जाता है, अतः
ोरथ पाठ नहीं बोलना चाहिये।
इस अतिचार व प्रतिक्रमण पाठ से सामायिक पाली जाती है

के लिए और भी अधिक अवकाश [संक्षेप] करना तथा जो दिशा मर्यादा एक करण एक योग से की थी, उसे दो करण तीन योग से करना 'दिशावकाशिक व्रत' है। इसी प्रकार अन्य भी पहले से लेकर आठवें व्रत तक में जो भी हिंसा आदि की मर्यादा की, उसे कम करना भी 'दिशावकाशिक व्रत' में है।

प्र. : आठों ही व्रतों के संक्षेप का उदाहरण बताइए।

उ. : जैसे—'आज मैं सम्पूर्ण दिन या मुहूर्त दो मुहूर्त आदि तक मापराधी त्रस पर भी हाथ भी नहीं चलाऊंगा [अहिंसा], छोटी झूठ भी नहीं बोलूंगा, मौन रखूंगा [सत्य] किसी का तिनका भी बिना पूछे-मांगे नहीं लूंगा [अचौर्य], स्त्री का स्पर्श भी नहीं करूंगा [ब्रह्मचर्य], अमुक परिमाण से अधिक परिग्रह मिलने पर अपना करके नहीं रखूंगा [परिग्रह परिमाण व्रत] अपने गांव-नगर से बाहर नहीं जाऊंगा, गांव नगर में भी अपने घर दुकान या नौकरी के स्थान से अन्य स्थानों पर नहीं जाऊंगा (दिग्व्रत), 'पच्चीस द्रव्य' के उपरांत नहीं लगाऊंगा'—इत्यादि [जो द्रव्यादि उपभोग-परिभोग पदार्थों की मर्यादा की है, उन्हें घटाकर आज १० आदि से अधिक द्रव्य भोग में नहीं लूंगा। अमुक परिमाण में आय हो जाने पश्चात् कर्म या व्यापार नहीं करूंगा (उपभोग परिभोग व्रत) देवादि के लिए अर्थदण्ड भी नहीं करूंगा अनर्थ दण्ड व्रत), इत्यादि प्रकार से प्रतिदिन आठ व्रतों का संक्षेप किया जा सकता है।

प्र. : वर्तमान में व्रत संक्षेप कैसे किया जाता है ?

उ. : वर्तमान में चौदह नियमों से कुछ व्रतों का संक्षेप किया जाता है। वे नियम इस प्रकार हैं :

१. सचित पृथ्वीकायादि की मर्यादा । २. द्रव्य—खान-पान सम्बन्धी द्रव्यों की मर्यादा । ३. विगय—की मर्यादा । ४. पन्नी—पगरखी ग्रादि की मर्यादा । ५. ताम्बूल-मुखवास की मर्यादा । ६. वस्त्र—की मर्यादा । ७. कुसुम—पुष्प, इत्र की मर्यादा । ८. वाहन—की मर्यादा । ९. शयन—योग्य पदार्थों की मर्यादा । १०. विलेपन—द्रव्यों की मर्यादा । ११. ब्रह्मचर्य—की अधिक मर्यादा । १२. दिग्—दिशा की अधिक मर्यादा । १३. स्नान—की सख्या और जल की मर्यादा । १४. भक्त—एक वार, दो वार ग्रादि भोजन की मर्यादा । इन चौदह बोलों में ११वें बोल से चौथे व्रत का, १२वें बोल से छठे व्रत का और शेष बोलो से सातवें व्रत का संक्षेप किया जाता है ।

कई श्रावक १. असि (खड्ग), २. मषी (स्याही) और कृषि (खेती) की भी मर्यादा करते है, अर्थात् मैं इतनी आय हो जाने के पश्चात्, १. मूल वस्तुओं से नई वस्तुओं का निर्माण या २. वस्तुओं का क्रय-विक्रय या ३. मूल वस्तुओं का उत्पादन निर्माण नहीं करूंगा ।' ऐसे प्रत्याख्यान भी लेते हैं ।

---

१९. 'पौषधव्रत' व्रत पाठ

ग्यारहवा	: ग्यारहवां
पडिपुण्ण	: प्रतिपूर्ण (चउव्विहार, निराहार)
पौषधव्रत	: आत्मा का विशेष पोषक व्रत
*१. असणं	: अशन (अन्नाहार और विगय)

*'करेमि भंते ! पडिपुण्णं पोसहं' ।

पाण	: पान (धोवन या गरम जल)
खाइम	: खाद्य (फल, मेवा, औषधि आदि)
साइम	: स्वाद्य (लोंग सुपारी आदि इन चा आहार)
का पच्चक्खाण	: का प्रत्याख्यान करता हूँ
२. अबभ सेवन	: मैथुन सेवन
का पच्चक्खाण	: का प्रत्याख्यान करता हूँ
३. मणि-सुवण्ण	: मणि, सोना आदि के आभूषण
का पच्चक्खाण	: पहनने का प्रत्याख्यान करता हूँ
४. माला-	: फूलमाला पहनने का
वण्णग-	: (कस्तूरी आदि के) वर्ण-रंग का ल्य
विलेवण-	: (चन्दनादि के) विलेपन का
का पच्चक्खाण	: प्रत्याख्यान करता हूँ
५. सत्थ-मुसलादि	: शस्त्र, जैसे मूशल आदि को काम
सावज्ज-जोग-सेवन	: लेने रूप सावद्य योग सेवने का
का पच्चक्खाण	: प्रत्याख्यान करता हूं

जाव अहोरत्तं पज्जुवासामि। दुविहं तिविहेणं न करेमि,[१] कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा,[*]।

अतिचार पाठ*

ऐसे ग्यारहवें प्रतिपूर्ण पौषध ग्यारहवें प्रतिपूर्ण पौषध व्रत व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा— के विषय में जो कोई अतिचार न समायरियव्वा त जहा- ते आलोऊ—लगा हो, तो आलोउं—

१ अप्पडिलेहिय-दुप्पडिलेहिय सेज्जा-संथारए	: पौषध में शय्या-संथारा न देखा (न प्रति लेखा) हो या अच्छी तरह (विधिसे) न देखा हो।
२. अप्पमज्जिय-दुप्पमज्जिय सेज्जासंथारए	: पूंजा न हो या अच्छी तरह (विधि) से पूंजा न हो।
३. अप्पडिलेहिय-दुप्पडिलेहिय-उच्चार-पासवण-भूमि	: उच्चार-प्रश्रवण की भूमि न देखी (न प्रतिलेखी) हो या अच्छी तरह (विधि) से) न देखी हो
अप्पमज्जिय-दुप्पमज्जिय उच्चारण-पासवण-भूमि	. पूंजी न हो या अच्छी तरह (विधि से) पूंजी न हो
पोसहस्स सम्म अणणुपालणया	: उपवासयुक्त पौषध का सम्यक् प्रकार से पालन न किया हो।
जो मे देवसिओ अइयारो कओ	इन अतिचारों में से मुझे जो कोई दिन सबंधी अतिचार लगा हो, तो

तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

'पौषध व्रत' प्रश्नोत्तरी

प्र. : पौषधमें १. आहार, २, अब्रह्म, ३. शरीर-सत्कार और ४. सावद्ययोग्य—ये चारों बोल छोड़ना आवश्यक हैं क्या ?

---

*इस अतिचार व प्रतिक्रमण पाठ मे पौषध पाला जाता है। शेष विधि सामायिक पालने के समान है। भिन्नता यह है कि सम्मं काएणं ...... के पहले (पडिपुण्णं) पोसहं बोलना चाहिए।

ा और दया रूप पौषध करने वालों का शास्त्रीय उदाहरण दीजिए।

उ. : जैसे 'शंखजी' ने प्रारम्भ में आठ प्रहर से कम का पौषध ग्रहण किया था तथा पुष्कली आदि ने खाते पीते आठ प्रहर से कम का पौषध किया था।

प्र. : पानी पीकर देश (दसवाँ) पौषध करने वाले को क्या पाठ बोलना चाहिए ?

उ : 'करेमि, भंते ! देस पोसहं, असण, खाइम साइम का पच्चक्खाण' कहकर 'अबंभ सेवण का पच्चक्खाण' आदि शेष पाठ प्रतिपूर्ण पौषध के समान कहना चाहिए।

प्र. : चारों आहार करके देश पौषध संवर या (दया) करने वाले को क्या पाठ बोलना चाहिए ?

उ. : करेमि, भन्ते ! देस-पोसहं अबंभसेवण का पच्चक्खाण इत्यादि। शेष पाठ पूर्ववत् बोलना चाहिए। जो संवर या एक करण एक योग से करना चाहें, उन्हें 'दुविहं तिविहेणं, न करेमि न कारवेमि, मणसा वयसा कायसा' के स्थान पर 'एगविहं एगविहेणं न करेमि कायसा' पाठ बोलना चाहिए।

प्र. : सामायिक और पौषध में क्या अन्तर है ?

उ. एक सामायिक केवल एक मुहूर्त (४८ मिनिट) की होती है, जब कि पौषध कम-से-कम भी चार प्रहर का (लगभग १२ घंटे का) होता है। सामायिक में निद्रा और आहार का त्याग करना ही होता है, जब कि पौषध चार और उससे अधिक प्रहर का होने से उनमें निद्रा भी ली जा सकती है

देखना प्रतिलेखन है तथा जीवादि दीखने पर उन्हें कष्ट हो ऐसी यतना से उन्हें कोमल पूंजनी से हल्के हाथों से लेना तथा एकांत सुरक्षित स्थान में ले जाकर छोड़ना प्रमार्जना है। जीव न दीखने पर भी रात्रि को रजोहरण से आगे चलने की भूमि शुद्ध करना तथा दिन को पौषधशाला की धूल रज साफ करना आदि भी प्रमार्जना है।

प्र.: प्रतिलेखन-प्रमार्जन किस क्रम से करना चाहिए ?

उ.: उभयकाल पहले मुखवस्त्रिका, फिर पूंजनी, फिर वस्त्र, फिर सम्नारक, फिर पौषधशाला, फिर मल-मूत्र भूमि और गोचरी के पात्र हों, तो फिर उन पात्रों का प्रतिलेखन करना चाहिये।

प्र.: पहले सामायिक ली हुई हो और पीछे पौषध की भावना जगे, तो सामायिक पाल कर पौषध लें या सीधे ही ?

उ.: सीधे ही। क्योंकि पालकर लेने से बीच में अव्रत लगता है।

प्र.: पौषध लेने के पश्चात् सामायिक का काल आने पर सामायिक पालें या नहीं ?

उ.: सामायिक विधिवत् न पालें, क्योंकि पौषध चल रहा है। पर सामायिक-पूर्ति की स्मृति के लिए नमस्कार मन्त्र गिन लें, जिससे फिर निद्रा, आहार, निहारादि कर सकें।

प्र.: पौषध में सामायिक करें या नहीं ?

उ.: करना सामान्यतः विशेष लाभप्रद नहीं है। किन्तु यदि कोई 'निद्रा आहार, निहार, आलंबन आदि इतने समय नहीं करूंगा।' आदि के रूप में सामायिक करे, तो वह सामायिक कर सकता है।

१७ 'अतिथि-संविभाग व्रत' व्रत पाठ

बारहवां 'अतिथि	अतिथि (जिनके आने की ति[illegible] नियत नही)
संविभाग	उन्हे विधि से अशन आदि का[illegible] भाग देना
व्रत ।	रूप व्रत
समणे	श्रमण (मोक्षानुकूल तप-श्रम [illegible] वाले।
निग्गंथे,	निर्ग्रन्थो (स्त्री और परि[illegible] त्यागियों) को
फासुय-	: प्रासुक (जीवरहित, अचित)
एसणिज्जेणं	एषणीय (आधा कर्म आदि [illegible] रहित)
१.-२. असण-पाण-	: भोजन-पानी
३.-४. खाइम-साइमं-	: खाद्य स्वाद्य
५. वत्थ-	: (सफेद रंग का सूती) वस्त्र
६. पडिग्गह-	: (लकड़ा, तुम्बा और मिट्टी के)
७. कंबल-	: [ऊनी सफेद] कम्बल
८. पाय-पुंछणेणं	: रजोहरण [ओघा] [तथा]
पडिहारिय	: प्रातिहार्य [जिन्हें साधु, ...
९.-१०, पीढ-फलग	: [ऐसे] चौकी, पट्टा
११, सेज्जा-	: पौषधशाला-घर
१२, संथारएणं	: [तृण आदि का] आसन
१३, ओसह—	: औषध [एक द्रव्य वाली, जैसे
१४, भेसज्जेणं	: भेषज [अनेक द्रव्य वाली त्रिफला]

डिलाभेमाणे	: बहराता (गुरु-बुद्धि से देना) हुआ
हिरामि	. विहार करता हूँ (रहता हूँ)

मनोरथ पाठ

ऐसी मेरी श्रद्धहणा प्ररूपणा तो है, साधु साध्वी का ग मिलने पर निर्दोष दान दूँ, तब फरसना करके शुद्ध ऊँ।

अतिचार पाठ

ऐ बारहवें अतिथि सविभाग—बारहवें अतिथि सविभाग व्रत	
त के पच अइयारा	के विषय मे जो कोई अतिचार
णियव्वा न समायरियव्वा	लगा हो, तो आलोउं—
तहा—ते आलोउ—	

. सचित्त-निक्खेवणया	. अचित्त (अशनादि) वस्तु, सचित्त (जलादि) पर रक्खी हो,
सचित्त-पिहणया	. अचित्त वस्तु सचित्त से ढँकी हो,
कालाइक्कमे	: साधुओं को भिक्षा देने का समय टाल दिया हो,
परोवएसे	: आप सूझता (शुद्ध) होते हुए भी दूसरों से दान दिलाया हो,
मच्छरियाए	: मत्सर (ईर्ष्या) भाव से दान दिया हो,
मे देवसिओ	: इन अतिचारों में से मुझे जो कोई दिन
इयारो कओ	: सबंधी अतिचार लगा हो, तो

तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।
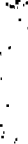
प्र. : 'सचित्त निक्षेप' के उदाहरण दीजिए।

उ. : जैसे रोटी-पात्र को लवण-पात्र पर रखना, धोवन-जल को सचित्त जल के घड़े पर रखना, खिचड़ी आदि को चूल्हे पर रखना, मिठाई आदि को हरी पत्तल पर रखना आदि।

प्र. : 'सचित्त निक्खेवणया' और 'पिहणया' से और क्या समझना चाहिए ?

उ. : साधु दान के योग्य पदार्थों को जहाँ पर, जिस स्थिति में रखने से साधु उन्हें न ले सके, ऐसे स्थान और स्थिति में रखना। जैसे अचित्त अशनादि को सचित्त पदार्थों से छुआ-कर या सचित्त पदार्थों में मिलाकर रखना, ताले में या ऊँचे आले में रखना आदि।

प्र. : 'कालाइक्कमे' में और क्या सम्मिलित है ?

उ. : भोजन के समय द्वार बन्द रखना, स्वयं घर के बाहर रहना, रात्रि के समय दान की भावना भाना, साधुओं को सड़ी हुई वस्तुएँ देना आदि।

प्र. : 'परोवएसे' में और क्या सम्मिलित है ?

उ. : अपनी वस्तु पराई बताना, कोई दान का उपदेश दे तो उसे कहना—आप ही दीजिए—इत्यादि।

प्र. : मत्सरदान किसे कहते हैं ?

उ. : अपने से अधिक दानी के प्रति ईर्ष्या से दान देना, विशिष्ट दानी कहलाने के लिए दान देना, दान देकर बताना आदि को।

११. घृणित—निन्दनीय कृत्य नहीं करना ।

१२. आय के अनुसार व्यय करें अर्थात् आमदनी से अधिक खर्च नहीं करना ।

१३. अपना वेश, देश काल और अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार रखना ।

१४. बुद्धिमान होना ।

१५. प्रतिदिन धर्म श्रवण करना ।

१६. अजीर्ण होने पर भोजन नहीं करना ।

१७. यथा समय भोजन करना ।

१८. अबाधित त्रिवर्ग साधन—अर्थ और काम की इस प्रकार साधना नही करे, जिससे कि धर्म बाधित हो ।

१९. साधु और दीन अनाथों को दान देना !

२०. दुराग्रह से रहित होना !

२१. गुण पक्षपात—गुणवानों, सदाचारियों, धर्मीजनों और सज्जनों तथा अहिंसा सत्यादि सद्गुणों का पक्ष करना ।

२२. निषिद्ध देशादि में नहीं जाना !

२३. अपनी शक्ति को तोल कर कार्य मे प्रवृति करना ।

२४. व्रतस्थ ज्ञानवृद्धों की पूजा करना ।

२५. दीर्घदर्शी—दूरदर्शिता पूर्वक, भावी हानि लाभ का विचार करके कार्य करना ।

२६. पोष्य पोषक—माता, पिता, पत्नी, पुत्रादि और आश्रितजनों का पोषण करना ।

२७. विशेषज्ञ—अपना ज्ञान बढ़ा कर कार्य-अकार्य, एवं उपादेय के विषय में अनुभव बढ़ाना ।

५ श्रावक जो सूत्र, अर्थ और दोनों को प्राप्त करने वाले, ग्रहण करने वाले, पूछ कर निश्चित करने वाले और रहस्य-ज्ञान प्राप्त करने वाले होवें।

६. श्रावकजी की धर्मरुचि इतनी गहरी हो कि जिसका प्रभाव रक्त और मास में ही नहीं, हड्डियो और मज्जा तक मे व्याप्त हो जाय।

७. श्रावकजी निर्ग्रन्थ, प्रवचन ही सार है, अर्थ है और परमार्थ है। शेष सभी बातें, सभी वस्तुएं और सभी सयोग अनर्थ है, ऐसी दृढ श्रद्धा रखें और धर्म बन्धुओ में चर्चा करे।

८. श्रावकजी कूड़-कपट, ठगाई, अन्याय, अनीति एव अनाचार से दूर रह कर अपना जीवन एवं आजीविका न्याय, नीति, सदाचार और धर्म साधना से निर्मल एवं स्वच्छ रखें।

९. श्रावकजी दान के लिए अपने घर के द्वार खुले रखें।

१०. श्रावकजी प्रतिमास दोनों पक्ष की अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा और अमावस्या इस प्रकार छः पौषध करें।

११. श्रावकजी के सदाचार की प्रतिष्ठा इतनी व्याप्त हो कि यदि वे धन से भरे हुए भण्डारों और महिलाओं के निवास-अतःपुर (राजाओं के रनवास) में भी चले जायं तो उन पर किसी प्रकार की शका नही हो। उनका विश्वास हो।

१२. श्रावकजी अपने व्रत नियमों का निर्दोष रीति से पालन करे।

१३. श्रावकजी श्रमण निर्ग्रन्थो को भक्ति पूर्वक निर्दोष आहारादि का दान करें।

१४. श्रावकजी धर्म का प्रचार करें। वक्तव्य लेखन, भाषण आदि से धर्म की वृद्धि करें।

१५. श्रावकजी अल्प इच्छा वाले होवें। लोभ को वश में रखें।

कच्ची वनस्पति (पके हुए बीज निकाले हुए फल चूल्हे पर पकाये हुए शाक नमक मिर्च डालकर बटी हुई चटनी के सिवाय वनस्पति खाना नहीं, यदि खाना हो तो अमुक नग से अधिक उपयोग में लेना नहीं, आदि मर्यादा करना।

४. विगय–दूध, दही, घी, तेल, शक्कर गुड़, मिठाई आदि की मर्यादा करना।

५. स्वादी–मुखवास, पान, सुपारी, लौंग, सौंफ, इलायची धने की दाल, चूर्ण आदि के त्याग करना या मर्यादा करना।

६. मत्त भोजन का माप-वजन या टक (बार) की मर्यादा करना। चलते हुए नहीं खाना। रात्रि में नहीं खाना, और वस्तु को देखे बिना नहीं खाना।

७. ब्रह्मचर्य–परस्त्री गमन के त्याग। स्वस्त्री के त्याग या मर्यादा। दिवस में ब्रह्मचर्य पालन। नाटक सिनेमा की मर्यादा।

८. वाहन–चलते वाहन जैसे हाथी, घोड़े, ऊंट आदि, तैरते वाहन (जलयान) जहाज, नाव आदि, उड़ते वाहन (नभयान) हवाई जहाज, फिरते वाहन (स्थलयान) रेल, मोटर, टैक्सी, साइकल, तांगे, बैलगाड़ी आदि का त्याग करना या मर्यादा करना।

९. पगरखी–जूते, सैण्डल, चप्पल, मौजे आदि के त्याग या मर्यादा करना। हिंसक चमड़े के बने हुए जूते का त्याग करना।

१०. वस्त्र–पहनने-ओढ़ने के वस्त्रों की मर्यादा। रूमाल, टुवाल, नेपकिन सहित वस्त्रों के नग की मर्यादा करना।

११. शयन–सोने, बैठने आराम करने के साधनों की मर्यादा। खाट-पलंग, टेबल, कुर्सी, गादी, तकिये आदि की मर्यादा करना।

१२. विलेपन–सौंदर्य-प्रसाधन और शक्ति आदि के लिये लगाये जाने वाले पदार्थ-जैसे-तेल, साबुन, केसर, चन्दन आदि विलेपन द्रव्यों का मर्यादा करना।

पहला बोल : 'सम्यक्त्व के चार श्रद्धान'

श्रद्धान : १ (जैसे पर्वतादि मे धूएँ को देख कर वहा अग्नि होने का विश्वास होता है, उसी प्रकार) जिन कार्यों से 'इस पुरुष मे सम्यक्त्व है'—इस का विश्वास हो, उसे 'सम्यक्त्व का श्रद्धान' कहते हैं । अथवा २. जिन कार्यों से धर्म मे श्रद्धा उत्पन्न हो और धर्म श्रद्धा सुरक्षित रहे, उसे सम्यक्त्व का श्रद्धान कहते हैं ।

१. परमार्थ सुस्तव—परमार्थ का परिचय करे अर्थात् नव तत्वों का ज्ञान प्राप्त करे ।

२. सुदृष्ट परमार्थ सेवन—परमार्थ के अच्छे जानकार अर्थात् नव तत्वों के अच्छे जानकार पुरुषों की सेवा करे ।

३. व्यापन्न वर्जन—जिन्होने सम्यक्त्व का वमन कर दिया (छोड़ दिया)—ऐसे १. निह्नवो की, २. अन्य मत धारण कर लेने वालो की तथा ३. नास्तिको की सगति न करे । चाहे उनका वेश जैन मुनि का भी क्यों न हो ।

४. कुदर्शन वर्जन—अन्य मतावलम्बी कुतीर्थियों की संगति से दूर रहे ।

—उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन २८ गाथा २८ से ।

दूसरा बोल : 'सम्यक्त्व के तीन लिंग'

लिंग : (जैसे ग्राम के बाहरी पोले रंग से उसमें रहे हुए मधुर रस का अनुमान होता है, वैसे ही) (सहचर) बाहरी गुणों से 'इस पुरुष मे

थ में पृथ्वीकाय (=मिट्टी) प्रायः अचित्त (=निर्जीव) रहती वनस्पतिकाय और त्रसकाय का प्रायः अभाव रहता है, समें १. सयम विराधना नही होती तथा सुपथ में काटे, कंकर, थर नही होते, जिससे २ आत्मविराधना (अपने शरीर की राधना) भी नही होती। उत्पथ मे १ सयम विराधना और , आत्म विराधना दोनो की सम्भावना रहती है, अतः तीर्थंकरों उत्पथ में चलने का निषेध किया है।

यतना से—चार प्रकार की यतना से चले। १. द्रव्य यतना —आखो से छह काय के जीव तथा काटे आदि अजीव पदार्थों ो देखकर चले। २, क्षेत्र यतना मे-शरीर प्रमाण (या युग माण, (धूसरा प्रमाण) अर्थात् चार हाथ प्रमाण आगे की भूमि खता हुआ चले। ३, कालयतना मे-जब तक गमनागमन करे ब तक। ४. भाव यतना में-इन्द्रियो के पाच विषय—१ शब्द, . रूप, ३. गध, ४. रस, ५. स्पर्श तथा स्वाध्याय के पाच दि—१. वाचना, २ पृच्छना, ३. परिवर्तना, ४. अनुप्रेक्षा, ., धर्मकथा, इन दस बोलो को वर्जकर उपयोग सहित चले र्थात् शब्दश्रवण, वाचनाग्रहण आदि न करता हुआ चले।

: ये दस ही बोल ईर्या समिति का उपघात (=नाश) करने वाले हैं, इसलिए तीर्थंकरों ने ईर्या समिति में इनका निषेध किया है। ईर्या समिति में साधु श्रावक को तन्मूर्ति =तन्मुत्ति) और तत्पुरस्कार (तप्पुरक्कारे) होकर चलना चाहिए अर्थात् अपनी काया और मन के उपयोग को ईर्या में ही लगाते हुए चलना चाहिये।

दूसरी भाषा समिति का स्वरूप

भाषा समिति : विवेकपूर्वक बोलना अर्थात् 'किसी

=स्त्रीकथा आदि) इन आठ बोलो को वर्जकर राग-द्वेष रहित
या उपयोग सहित भाषा बोले । क्योकि क्रोध आदि में
। आने पर जीव सत्य और व्यवहार-भाषा का ध्यान नहीं रख
ता तथा असत्य और मिश्र भाषा बोल जाता है—जैसे
, क्रोध में पिता पुत्र को कह देता है कि 'तू मेरा पुत्र नही है' ।
मान में गुणहीन मनुष्य भी कह देता हैं कि 'गुणो में मेरी
मता करने वाला कोई नही है । ३ माया में पुरुष, अपरिचित
थान पर अपने पुत्रादिकों के विषय मे कह देता हैं कि 'न तो
रा यह पुत्र है और न मैं इसका पिता हूँ । ४ लोभ में
णिकादि, पराई वस्तु को भी अपनी कह देते हैं । ५. हास्य में
नुष्य, मूर्ख को भी पण्डित कह देता है । ६. भय में मनुष्य
कार्य करके भी कह देता है कि—'मैंने वह अकार्य नहीं किया ।'
. मौखर्य मे मनुष्य सत्पुरुषो की भी निन्दा कर देता है ।
. विकथा में मनुष्य कुरूप स्त्री को भी अद्वितीय सुन्दरी कह
ता है । इसलिए तीर्थंकरों ने भाषा समिति में इन क्रोधादि
आठ बोलों का निषेध किया है ।

तीसरी एषणा समिति का स्वरूप

एषणा समिति : विवेकपूर्वक आहार लाना तथा
करना अर्थात् किसी जीव की विराधना न हो और आधा-कर्म
आदि ४७ दोषों में कोई दोष न लगे, इसका उपयोग रखकर
आहार लाना तथा करना ।

तैश ३. काल
भाप, उत्पादन
नीस १४
२.

उम दोहणप : साधु आहार आदि ग्रहण करे, उससे पहले ा, मुख्यतया गृहस्थ की ओर से साधु के लिए आहार बनाने देने से लगने वाले दोष।

१. आहाकम्म (आधाकर्म) : जो आहार आदि ले रहा , उस साधु द्वारा अपने लिए बनाया हुआ आहार आदि लेना और भोगना)।

२. उद्देसिय (औद्देशिक) : अन्य साधु के लिए बनाया हुआ आहारादि लेना।

३. पूइकम्मे (पूतिकर्म) : शुद्ध आहारादि में सहस्र घर ा अन्तर से भी आधाकर्मी अशुद्ध आहारादि का अंश मात्र भी मिला दिया हो, उसे लेना।

४. मीसजाए (मिश्रजात) : गृहस्थ के लिए और (साधु ः लिए) सम्मिलित बनाया हुआ आहारादि लेना।

'आधाकर्म' आदि इन चारों आहार में साधु के लिए रम्भ होता है, इसलिए ये चारों आहार आदि सदोष हैं।

५. ठवणा (स्थापना) : साधु के लिए रखा हुआ बालक, भिखारी आदि के मांगने पर भी जो उन्हें न दिया ा य, वैसा) आहारादि लेना।

इस 'स्थापित' आहार से बालक आदि को अन्तराय होती है, इसलिए यह आहार सदोष है।

६. पाहुडिया (प्राभृतिका) : 'साधुओं को भी जीमनवार ा आहारादि दान में दिया जा सके, इसलिए गृहस्थ ने जिस

'आहार कहाँ से लाया जा रहा है ?' यदि यह दिखाई न देता हो, तो तीन घर की दूरी से भी आहार लेना वर्ज्य है।

'दूर अभिहृत' आहार में भी अनन्तर उक्त दोष संभव हैं तथा 'साधु के लिए गृहस्थ-मार्ग में अयतना से चले' यह दोष भी संभव है, अतः यह आहार सदोष है।

१२. उब्भिन्ने (उद्भिन्न) : लेपन ढक्कन आदि अयतना से खोल कर दिया हुआ (या पीछे जिसका लेपन ढक्कन आदि अयतना से लगाया जाय, ऐसा) आहार आदि लेना।

पृथ्वीकाय आदि की विराधना के कारण, यह आहार सदोष है।

१३. मालोहडे (मालापहृत) : ऊँचे माले आदि विषम स्थान से कठिनता से निकाला हुआ आहार आदि लेना।

ऐसा 'मालापहृत' आहार देता हुआ दाता कभी गिर कर अपंग हो सकता है, तथा उसके गिरने से त्रस-स्थावर जीवों की विराधना हो सकती है; अतः यह आहार सदोष है।

१४. अच्छिज्जे (आच्छेद्य) : साधु के लिए निर्बल से छीना हुआ आहार आदि लेना।

निर्बल को दुःख पहुंचने के कारण यह आहार सदोष है।

१५. अणिसिट्ठे (अनिःसृष्ट) : जिस आहार आदि के अनेक स्वामी हों, उसके अन्य स्वामियों की स्वीकृति न हुई हो, या उसका बँटवारा न हुआ हो; ऐसी दशा में उस आहार आदि को लेना।

अन्य स्वामियों की चोरी के कारण यह आहार सदोष है।

१६. अज्झोयरए (अध्यवपूरक) : पहले बनते हुए मिश्र आहारादि में साधुओं के लिए नई सामग्री मिलाई हो (ओरी हो), वैसा आहार आदि लेना।

यह 'अध्यवपूरक' आहार भी आधाकर्मादि के समान आरंभ वाला होने से सदोष है।

उत्पादना के १६ सोलह दोष की मूल गाथाएँ

धाई[1] दूई[2] निमित्ते[3] आजीव[4] वणीमगे[5] तिगिच्छा[6] य
कोहे[7] माणे[8] माया[9], लोभे[10] या हवंति दस एए
पुव्वि-पच्छा-संथव[11], विज्जा[12] मंत[13] चुण्ण[14] जोगे[15] य
उप्पायणाइ दोसा, सोलसमे मूलकम्मे[16] य

धात्री[1] दूति[2] निमित्त,[3] आजीव[4] वनीपक[5] चिकित्सा[6] व
क्रोध[7] मान,[8] माया,[9] लोभ[10] ये सब हुए दश ॥१॥
पहले पीछे संस्तव[11], विद्या[12] मंत्र[13] चूर्ण[14] योग[15] व।
सोलहवा मूलकर्म[16] ये सब हैं उत्पादना दोष ॥२॥

उत्पादना दोष : आहार आदि ग्रहण करते समय मुख्यतया साधु की ओर से साधु को लगने वाले दोष।

१. धाई (धात्री) : धाय का काम करके अर्थात् बच्चों को खिलाने पिलाने का काम करके आहार आदि लेना।

२. दूई (दूति) : दूति का काम करने अर्थात् सन्देश को पहुंचाने-लाने का काम करके आहार आदि लेना।

धाय आदि काम करने से १. साधु के भिक्षुकपन में और २. साधुत्व में कमी आती है तथा ३. उनमें समय तथा ज्ञान दर्शन चारित्र की आराधना में बाधा पड़ती है, अत: ये दोनों आहार सदोष हैं।

३. निमित्ते (निमित्त) : बाह्य निमित्तों से १. भूत २. भविष्य ३. वर्तमान काल के १. लाभ २. अलाभ ३. सुख ४. दुख ५. जीवन ६. मरण को बतलाकर या निमित्त सिखलाकर आहार आदि लेना।

लाभादि-बात कर आहार लेने में १ भिक्षुकपन में कमी आती है, २. संसार प्रवृत्ति बढ़ती है, ३. जीव विराधना संभव है और ४. बताया हुआ निमित्त मिथ्या होने पर गृहस्थ को रोषादि संभव है; इसलिए यह आहार सदोष है।

४. आजीवे : अपने जाति कुल सम्बन्ध आदि को प्रकट करके आहार आदि लेना।

इसमें भी भिक्षुकपन में कमी आती है।

५. वणीमगे (वनीपक) : रंक-भिखारी के समान काया में दीनता प्रकट करके, वचन से दीन भाषा बोल कर तथा मन में दीनता लाकर आहार आदि लेना।

साधु 'भिक्षु' अवश्य है, पर 'दीन' नहीं। अतः दीनता करके आहार लेना दोष है।

६. तिगिच्छे (चिकित्सा) : चिकित्सा करके आहार आदि लेना।

चिकित्सा करने से भी १. भिक्षुकपन में कमी आती है २ जीव विराधना संभव है तथा ३. नीरोग न होने पर गृहस्थ को रोष संभव है, अतः यह आहार सदोष है।

७. कोहे (क्रोध) : क्रोध करके गृहस्थ को शाप आदि का भय दिखला कर आहार लेना।

८. माणे (मान) : मान करके गृहस्थ को लब्धि आदि दिखला कर, आहार आदि लेना।

९. माया (माया) : माया करके अथवा वेश आदि बदलकर आहार आदि लेना।

१०. लोहे (लोभ) : लोभ करके मर्यादा से अधिक या श्रेष्ठ आहार आदि लेना।

कषाय करके आहार लेने के कारण, ये चारों दोष सदोष हैं।

११. पुव्वि-पच्छा-संथव (पूर्व पश्चात् संस्तव) : अधिक आहार प्राप्ति के लिए दाता की दान से पहले या पीछे भाट समान प्रशंसा करना।

इसमें मिथ्याकथन से दोष आने से, यह आहार सदोष है।

१२. विज्जा (विद्या) : जिसकी अधिष्ठात्री देवी हो, जो साधना से सिद्ध हो, उसका प्रयोग करके या उसे सिखला करके आहार आदि लेना।

१३. मंते (मन्त्र) : जिसका अधिष्ठाता देव हो या जो बिना साधना अक्षर विन्यास मात्र से सिद्ध हो, उसका प्रयोग करके या उसे सिखला करके आहार आदि लेना।

१४. चुण्ण (चूर्ण) : अदृश्य होना, मोहित करना, स्तंभित करना आदि बातें जिससे हो सके, ऐसे अञ्जनादि का प्रयोग करके या सिखला करके आहार आदि लेना।

१५. जोग (योग) : जिसका लेप करने पर, आकाश में उड़ना, जल पर चलना, आदि बातें हो सकें, ऐसे पदार्थ का प्रयोग करके या सिखला कर के आहार आदि लेना।

१६. मूलकम्मे (मूलकर्म) : गर्भ स्तंभन, गर्भाधान, गर्भपात आदि बातें जिससे हो सके, ऐसी जड़ी बूटी, या जड़ी बूटी खिलाकर के आहार आदि लेना।

इन 'विद्या' आदि पाचो में भी निमित्त के समान दोष व होने से, ये पाचो आहार भी सदोष हैं।

एषणा के १० दश दोष की गाथा

किय[1] मक्खिय[2] निक्खित्त[3], पिहिय[4] साहरिय[5] [6]दायगुम्मीसे[7]।
परिणय[8] लित्त[9] छड्डिय,[10] एसण दोसा दस हवंति ॥१॥
कित[1] म्रक्षित[2] निक्षिप्त[3], पिहित[4] संहृत[5] दायको[6] न्मिश्रा[7]।
परिणत[8] लिप्त[9] छर्दित[10] दश हैं एषणा दोष ॥१॥

एषणा दोष : साधु और गृहस्थ दोनो की ओर से गोचरी में लगाने वाले दोष।

१. संकिय (शंकित) : 'यह आहार आदि (जब तक शंका दूर न हो, उससे पहले) लेना।

'शंकित' आहार 'अप्रासुक-अनेषणीय' भी हो सकता है; इसलिए यह आहार सदोष है।

२. मक्खिय (म्रक्षित) : १. दाता २. दान के पात्र या ३. दान के द्रव्य, सचित पृथ्वी, पानी, अग्नि या वनस्पति से संघट्ट युक्त (स्पर्श युक्त, छुए हुए हो) तो १. उस दाता से या २. उस दान के पात्र से ३. वे द्रव्य लेना।

३. निक्खित्त (निक्षिप्त) : १. दान के पात्र या दान के द्रव्य, सचित पृथ्वी आदि पर हों, तो १. उस दाता से या २. उस दान के पात्र से ३. वे द्रव्य लेना।

४. पिहिय (पिहित) : १. दाता या २. दान के पात्र या ३. दान के द्रव्य के ऊपर सचित्त पृथ्वी आदि हों तो १. उस दाता से या २. उस दान पात्र से ३. वे द्रव्य लेना।

१. द्रव्य से—भाण्डादि उपकरण यतना से उठावे और यतना से रक्खे । अर्थात् दिन मे पहले उपकरण देखकर और आवश्यकता हो, तो पूंज कर फिर शीघ्रता रहित उठावे तथा भूमि को पहले देखकर और आवश्यकता हो, तो पूंजकर फिर उपकरण को शीघ्रता रहित, शब्द न हो—इस प्रकार भूमि पर रक्खे तथा रात्रि को उपकरण पूंजकर उठावे और भूमि को पूंजकर भूमि पर रक्खे । देखने की आज्ञा इसलिए है कि—'त्रस स्थावर जीव दिख जाने पर उपकरण उठाते-रखते हुए उन जीवो की पूंजकर रक्षा की जा सकती है तथा पूंजने की आज्ञा इसलिए है कि उन्हे पूंजकर दूर करने से उनकी रक्षा हो जाती है । शीघ्रता न करने की आज्ञा इसलिए है कि १. शीघ्रता न करने से सहसा किसी नये जीव के नीचे आकर मरने की सभावना नही रहती । २. अपने शरीर पर भी अकस्मात् चोट पहुँचने की सभावना नही रहती तथा वायुकाय की अयतना नही होती ।

२. क्षेत्र से—भाण्डादि उपकरण इधर उधर बिखरे हुआ न रक्खें तथा गृहस्थी के घर पर भी न रक्खें । उपकरणों को इधर उधर बिखरा हुआ रखने से १. उनमें शीघ्र जीव प्रवेश की सम्भावना रहती है, २. पैरों से बार-बार अयतना का प्रसंग आता है तथा ३. अधिक स्थान की आवश्यकता पडती है, इत्यादि कई दोषों के वर्जन के लिए तीर्थंकरों ने उपकरणों को बिखरे हुए रखने का निषेध किया है । गृहस्थ के घर उपकरण रखने से साधुता में ममता, प्रमाण उपरांत परिग्रह और गृहस्थ वृत्ति उत्पन्न होने की आशंका रहती है; इत्यादि कई कारणों से तीर्थंकरो ने गृहस्थों के घर पर रखने का निषेध किया है ।

३. काल से—सभी उपकरणों को यथा समय उभयकाल

प्रतिलेखन करें। रात्रि में जीवों की हुई विराधना की आलोचना के लिए तथा उपकरण में प्रविष्ट हुए जीवों की रक्षा के लिए प्रातः काल सूर्योदय होने पश्चात् प्रतिलेखना करे तथा दिन में हुई विराधना की आलोचना के लिए तथा प्रविष्ट जीवों की रक्षा के लिए सूर्यास्त होने के पहले प्रतिलेखन करे।

४. भाव से—राग द्वेष उत्पन्न करने वाली उपधि तथा प्रमाण उपरांत उपधि न रखने और प्रमाणोपेत उपधि को रागद्वेष रहित तथा उपयोग सहित भोगे। १. बहुमूल्य, २. श्वेत वर्ण को छोड़कर अन्य वर्ण वाले, ३ धातु-निर्मित आदि उपकरण रागद्वेष उत्पन्न करने में निमित्त हैं, अतः इन उपकरणों को रखने का निषेध किया है।

साधु के लिए ७२ हाथ तथा साध्वी के लिए ९६ हाथ वस्त्र का प्रमाण माना है। पात्र का प्रमाण ४ चार माना है। इसके उपरान्त वस्त्र पात्र रखना तीर्थंकरों ने ममता का कारण परिग्रह कहा है।

उपधि अर्थात् उपकरण के दो भेद।

१. औधिक : जिन्हें सामान्यतः सभी साधु साध्वियाँ अपने पास सदा ही रखते हैं, जैसे मुखवस्त्रिका रजोहरण आदि।

२. औपग्रहिक : जिन्हें यतना और वृद्धावस्था आदि कारणों से कुछ ही साधु साध्वियाँ रखते हैं, जैसे दण्ड,पाट आदि।

पांचवीं परिस्थापनिका समिति का स्वरूप

उच्चार-प्रस्रवण - खेल - सिंघाण - जल्ल - ...
समिति : विवेकपूर्वक उच्चारादि परठ्ठवना ('फिर से

ध्यान ध्याता हुआ तथा आर्त-रौद्र ध्यान वर्जता हुआ) जीव.......करता है।

१४ तव (तप) : एकान्तर, मास-मास क्षमण (तप) आदि विकृष्ट (बड़ी) तपश्चर्या करता हुआ जीव..........करता है।

१५. चियाए (त्याग) . (द्रव्य से गोचरी में आधाकर्मी आदि आये हुए अशुद्ध आहार आदि को परिठवता हुआ तथा भाव से क्रोध आदि को त्यागता हुआ और। द्रव्य से प्रासुक एषणीय आहार आदि तथा भाव से ज्ञान आदि सुपात्र को देता हुआ जीव.........करता है।

१६. वेयावच्चे (वैयावृत्य) : (अरिहन्त वैयावृत्य आदि दस प्रकार की) वैयावृत्य करता हुआ जीव ....करता है।

१७. समाहि · छह काय जीवों को अभयदान देकर समाधि उत्पन्न करता हुआ जीव ....करता है।

१८. अपुव्व नाण ग्रहणे (अपूर्व ज्ञानग्रहण) : नित्य नया-नया सूत्रज्ञान कण्ठस्थ करता हुआ तथा अर्थज्ञान धारण करता हुआ जीव.........करता है।

१९. सुयभत्ती (श्रुतभक्ति) : जिनवाणी की (१. हृदय से श्रद्धा आदि बहुमान, २. वचन से गुणकीर्तन तथा, ३. काया से नमस्कार आदि) भक्ति करता हुआ जीव.........करता है।

२०. पवयण पभावणया (प्रवचन प्रभावना) : धर्मकथा वाद आदि से प्रवचन प्रभावना (ग्राम नगर आदि में मिथ्यात्व की उत्थापना और सम्यक्त्व की स्थापना) करता हुआ जीव ....करता है।

॥ इति २. तत्त्व विभाग समाप्त ॥

कथा--विभाग

सती मृगावती

पति सेवा पूरी करो, पालो शील महान् ।
रखो वीरता त्याग में, जो चाहो कल्याण ॥

'अहा ! कितना सुन्दर चित्र है ! संसार में इस सुन्दरी समान कौन होगा ?' चित्र देखने वाला इस प्रकार कहता था। उसका नाम था चंडप्रद्योतन । वह अवंती का राजा था कौशाम्बी के राजा शतानीक की रानी मृगावती का वह चित्र था। यह शिवादेवी की बहिन होती थी। शिवादेवी अवंती की रानी थी। अवंती का राजा चंडप्रद्योतन मृगावती का बहिनोई था। एक तो परायी स्त्री और रिश्ते में साली होने पर भी चंडप्रद्योतन के मन में खराब भावना उत्पन्न हुई।

एक बार की बात है। राजा शतानीक और रानी मृगावती दोनों बैठे थे। पास में कुमार उदयन खेल रहा था। तीनों आनद में थे। इसी समय राजा का दूत खबर लाया कि अवंती के राजा ने बड़ी भारी फौज के साथ चढ़ाई कर दी है। अचानक यह समाचार सुनकर राजा शतानीक कुछ घबराया। मृगावती ने राजा को हिम्मत बंधाई। राजा को प्रजा की ओर से भी अच्छी सहायता मिली। थोड़े समय में लड़ाई आरम्भ हो गई।

कौशाम्बी के किले के चारों तरफ अवंतिपति की विशाल सेना पड़ी है। किला अब टूटा, अब टूटा ऐसा था; फिर भी दिन बीतते जाते थे। इस

पतिभक्ता चेलना

रूप का भण्डार कुमारी चेलना वैशाली के राजा चेटक की पुत्री थी। उसके दांत अनार की कली जैसे थे। उसका मुखड़ा खिले हुए गुलाब के फूल के समान दिखाई देता था। जो उसे देखता वही उसकी सुन्दरता का बखान करता।

उस समय मगधदेश में श्रेणिक नामक राजा राज्य करता था। वह बहुत बलवान् था। चेलना कुमारी के साथ उसका विवाह हुआ, श्रेणिक ने चेलना को अपनी पटरानी बनाई। श्रेणिक और चेलना में बहुत गहरा प्रेम था। राजा चेलना के बिना रह नहीं सकता था।

घोर अन्धेरी रात थी। सर्दी की ऋतु थी। चारों ओर वातावरण में शान्ति थी। रानी गहरी नींद में सो रही थी। उस समय उसका हाथ उसकी मुलायम रजाई में से बाहर निकल गया। थोड़ी देर हाथ बाहर पड़ा रहने से बरफ की भांति ठण्डा हो गया। रानी एकदम चौंक कर जाग उठी। उसने झट से अपना हाथ रजाई में छिपा लिया।

चेलना एक सुसंस्कारी पिता की पुत्री थी। अतएव उसके दिल में विचार आया—मेरे चारों ओर मजबूत दीवालें खड़ी हैं। उसके भीतर छतरीदार पलंग है। अढ़ाई मन रूई के गद्दे पर मैं सो रही हूँ। ऊपर से रजाई ओढ़ रक्खी है। फिर भी मुझे ठण्ड मालूम देती है तो मेरे राज्य में खुले में सोनेवाले गरीब [illegible] का क्या हाल होगा? और सिर्फ एक वस्त्र पहनकर [illegible] में रहने वाले उन मुनिराज की क्या स्थिति होगी? [illegible], किसी श्रीमंत के पुत्र से मालूम होते हैं। वे इस कड़ाके [illegible] को किस प्रकार सहन करते होंगे!'

सत्य साधना

सत्य साधना की वस्तु है, [illegible]
[illegible] प्राप्त कर सकते हैं, जिन्होंने सत्य की पूर्ण रूप से साधना
की है। विविध धर्म ग्रन्थों में सत्य के स्वरूप को स्पष्ट
करने के लिए विविध परिभाषाएँ की गई हैं। जैन दर्शन में निश्चय
[illegible] पदार्थ वाणी के यथार्थ होने का नाम सत्य है"।
[illegible] जैसा देखा है, सुना है, समझा है, दूसरे को कहते समय
मन और वचन से वैसा ही प्रयोग करना सत्य कहलाता है।
[illegible] सूत्र में भी कहा है—"सभी वस्तुओं में सदा विकार रहित
रहने वाला तत्व ही सत्य है।" तात्पर्य यह है कि सत्य उस
अपरिवर्तित और वास्तविक वस्तु का नाम है जिसमें किसी वस्तु
के विकार कार्य आदि के रूप तथा गुण में परिवर्तन नहीं हो सके।

प्रश्न व्याकरण सूत्र में सत्य का बड़ा सुंदर व विशद
रूप प्रतिपादित किया है—"जंबू, बिइयं सच्चवयणं सुद्धं
[illegible] सिवं सुजायं सुभासियं सुव्वयं सुकहियं सुदिट्ठं सुपइट्ठियं
[illegible] सुसंजमिय-वयणं बुइयं सुरवरणरवसह पवि-
[illegible] महत्थं" हे जम्बू, यह दूसरा सत्यवचन रूप संवर है।
सत्य वचन शुद्ध है, पवित्र है, कल्याण का कारक है, शुभ अर्थ
का प्रकाशक है, सुभाषित है, सुव्रत, सुकथित, सुदृष्टि, सुप्रतिष्ठित
[illegible] सुप्रतिष्ठित-यश युक्त है। सुसंयमशील मनुष्यों द्वारा बोले
जाने वाला, उत्तम जाति के देवों नरवृषभों एवं बलवानों में
उत्तम तथा नियमित जीवन वाले महानुभावों द्वारा भावित है।
उत्तम साधुओं का धर्माचरण रूप है। तप व नियम के लिए
परमावश्यक है। विद्याधर तथा आकाश गामिनी विद्या का
साधन [illegible] है। सत्य भाषा लोक उत्तम, स्वर्ग एवं

यह अहिंसा भगवती संसार के भयभीत प्राणियो के शरण भूत है रक्षिका है। जिस प्रकार पक्षियो के लिए आ में उड़ना हितकारी है, प्यास से पीडित मनुष्यादि के लिए प्राणाधार है, भूखे के लिए भोजन जीवन दायक है, समुद्र मे जहाज पार पहुँचाने वाला है, रोगी के लिए औषधि हित है, उसी प्रकार अहिंसा सब प्राणियो के लिए क्षेम करी है, कल्याण करने वाली है।

अहिंसा और विज्ञान—अहिंसा एक विज्ञान है। लोग भ्रमवश यह मानते हैं कि प्राचीन काल में विज्ञान के स्व का परिचय नही था, उन्हे यह समझना चाहिये प्राचीन का विज्ञान हिंसा की नीव पर स्थित नही था। वर्तमान का विज्ञान अहिंसा की भूमि से हटकर हिंसा की भूमि पर आरूढ़ गया है। इस कारण आधुनिक विज्ञान समाज के लिए वरदान के बदले घोर अभिशाप सिद्ध हो रहा है। इसका मात्र कारण विज्ञान के विनाश कारी साधनों का आविष्कार होना है। घातक शस्त्रों के निर्माण से ससार में महा विनाश के बादल मडराने लगे हैं। तीसरे महायुद्ध की विभीषिका से सभी भयभीत हैं। एक वैज्ञानिक ने आज की विषम परिस्थिति को देखकर कहा है कि आज की दुनिया बारूद के ढेर पर बैठी है, अग्नि की एक चिनगारी उसके विनाश के लिए पर्याप्त है।

सारांश यह है कि वास्तव मे विज्ञान वह है जो जगत की ज्ञान वृद्धि करे और मनुष्य की आत्मीयता की भावना को विस्तृत करे। जो विज्ञान विपरीत काम करता है वह विज्ञान नहीं है, कुज्ञान है।

सत्य साधना

सत्य आचरण की वस्तु है, इसलिए इसकी परिभाषा वे ही ग्रहण कर सकते हैं, जिन्होंने सत्य को पूर्ण रूप से आत्म सात किया हो। विविध धर्म ग्रन्थों में सत्य के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए विविध परिभाषाएँ दी गई हैं। योग दर्शन में लिखा है "...रहित वाणी के यथार्थ होने का नाम सत्य है"। ...जैसा देखा है सुना है, समझा है, दूसरे को कहते समय ...और वचन से वैसा ही प्रयोग करना सत्य कहलाता है। ...भारत में भी कहा है—'सभी वर्णों में सदा विकार रहित ...वाला तत्व ही सत्य है।" तात्पर्य यह है कि सत्य उस ...स्वाभाविक और वास्तविक वस्तु का नाम है जिससे किसी वस्तु ...विचार कार्य आदि के रूप तथा गुण में परिवर्तन नहीं हो सके।

प्रश्न व्याकरण सूत्र में सत्य का बड़ा सुंदर व विशद ...प्रतिपादित किया है....... जंबू, विइय सच्चवयणं सुद्ध ...सिवं सुजायं सुभासियं सुव्वय सुकहिय सुदिट्ठं सुपइट्ठिय ...जस सुसजमिय-वयण बुइय सुरवरणरवसह अवि-...महुर" हे जम्बू, यह दूसरा सत्यवचन रूप संवर है। ...वचन शुद्ध है, पवित्र है, कल्याण का कारक है, शुभ अर्थ का प्रकाशक है, सुभाषित है, सुव्रत, सुकथित, सुदृष्टि, सुप्रतिष्ठित ...सुप्रतिष्ठित-यश युक्त है। सुसंयमशील मनुष्यों द्वारा बोले जाने वाला, उत्तम जाति के देवों नरवृषभों एवं बलवानों में उत्तम तथा नियमित जीवन वाले महानुभावों द्वारा भाषित है। ... साधुओं का धर्माचरण रूप है। तप व नियम के लिए परमावश्यक है। विद्याधर तथा आकाश गामिनी विद्या का ... वचन है। सत्य भाषा लोक उत्तम,

ही पड़ेगा। पीतल पर सोने की पालिश करने पर वह सोने जैसा दिख सकता है, लेकिन असलियत में वह सोना नहीं। अंग्रेजी में कहावत है "सभी चमकने वाली वस्तुएँ सोना नहीं होती।" कृत्रिम कलात्मक कागज के सुमनों में सहज सुमन की सुगन्ध मिल नहीं सकती। कवि कहता है—

> सचाई छिप नही सकती, झूठे उसूलों से।
> खुशबू आ नहीं सकती, कागज के फूलों से।।

सत्य के भेद

सत्य एक ही है। लेकिन व्यवहार दृष्टि से उसके भेद अलग अलग तरह से बताये हैं। मन वचन काया की अपेक्षा से मानसिक वाचिक और कायिक सत्य के तीन भेद बताये हैं। स्थानांग सूत्र में चार प्रकार का सत्य प्रतिपादित किया है— "काउ उज्जुयया, भासुज्जयया, वाउज्जया अविसंवायणा जोगे" अर्थात् काया की सरलता, भाषा की सरलता, भाव की सरलता तथा कथनी करणी की सरलता। स्थानांग सूत्र के दसवें स्थान में सत्य के दस भेद भी बताये हैं जन पद सत्य, सम्मत सत्य, स्थापना सत्य, नाम सत्य, रूप सत्य, प्रतीक सत्य, व्यवहार—सत्य, भाव सत्य, योग सत्य, उपमा सत्य।

इस प्रकार शास्त्र कारों ने सत्य के अनेक भेद दर्शाते हुए सत्य की सर्वांगीण व्याख्या प्रस्तुत की। सत्य जीवन दर्शन है। ... और जीवन के हर क्षेत्र में सत्य की सदा आवश्यकता ... झूठ नहीं बोलना पर निंदा नहीं करना, ... हीं करना आदि का भी सत्

असत्य बोलना पाप है

परम उपकारी वीर प्रभु ने अट्ठारह पाप स्थान में असत्य भाषण को दूसरा पाप बताया है। कवि तुलसी दास ने इसको इस प्रकार कहा है—

> नहीं असत्य सम पातक पूजा।
> गिरि सम होई, न कोटिक गूंजा॥

जैसे करोड़ों गुंजाओं की राशि पहाड़ के समान नही बन सकती उसी प्रकार झूठ सब पापों मे बढ कर है।

झूठ सत्य का विरोधी, धर्म का नाशक इस लोक और परलोक के लिए दुःख का कारण है। इसकी निंदा करते हुए शास्त्र में कहा है—

"दूसरा आश्रव द्वार अलीक यानी मिथ्या भाषण है। यह मिथ्या भाषण गौरव हीन निकृष्ट जनों द्वारा सेवन किया जाता है। यह भय, दुःख, अकीर्ति और वैर को बढाता है, तथा राग द्वेष रूप मन को क्लेश देने वाला है। मिथ्या भाषण से विश्वास नही रहता। इससे प्राणियों की हिंसा होती है। इस मिथ्या भाषण के कारण प्राणी को बार बार जन्म मरण करना पड़ता है। इसका परिणाम बड़ा भयंकर होता है यह अनर्थ का द्वार है।"

जिस भाषा के बोलने से किसी जीव की हिंसा शास्त्रकारों ने उसको सत्य नही माना। सूयगडांग है—"सच्चेसु वा अणवज्जं वयन्ति" जो रहित है वह सत्य है। दशवैकालिक में भी कहा

तीन योग से और श्रावक व्रतों में दो करण तीन योग से की गई है। अहिंसा और सत्यव्रत की साधना संबंधी विचार के बाद यहां तीसरे अस्तेय व्रत की उपासना की चर्चा आवश्यक है।

अदत्तादान विरमण

अदत्तादान विरमण अदत्तादान के अभाव को कहते हैं। अर्थात् चोरी से निवृत्ति के लिए जो व्रत धारण किया जाता है उसे 'अदत्तादान विरमण' या अस्तेय व्रत कहते हैं। अस्तेय व्रत की महत्ता को समझने के लिए अदत्तादान की भयंकरता की जानकारी जरूरी है।

अदत्तादान का स्वरूप

मन वचन काया द्वारा दूसरे की वस्तु को स्वयं हरण करना, करवाना या उसका अनुमोदन करना चोरी है। महापुरुषों ने चोरी को निकृष्ट कुलक्षण बताया है। प्रश्न व्याकरण सूत्र में अदत्तादान (चोरी) की अति भर्त्सना करते हुए कहा है— "अदत्तादाणं, "अनज्जं अकित्ति करणं सया साहुगरहणिज्ज" अर्थात् अदत्तादान संसार में अपयश बढ़ाने वाला अनार्य कर्म है। सभी सज्जन पुरुषों ने इसकी निंदा की है अदत्तादान का स्वरूप निरूपण करते हुए कहा गया है —अदत्तादान मित्रों में वैमनस्य उत्पन्न करता है। प्रीति का नाश करता है। अविश्वास को बढ़ाता है। इससे लड़ाई झगड़ा, मार पीट कलह विवाद उत्पन्न होते हैं। वह हत्यादि भयानक कर्म कराने वाला, अनन्त संसार बढ़ाने वाला है।

चोरी करने वाला कभी सुखी नहीं रह सकता। खाना पीना पहनना उसके लिए हराम होता है। चोरी करने वाले को

को काणा, नपुसक को नपुसक, चोर को चोर और बीमार को बीमार नही कहना चाहिये"। क्योकि इस प्रकार कहने से उनको दु:ख होता है। कटुवचन का घाव तलवार और तीरके घाव स भी गहरा लगता है। "अंधे के लड़के अंधे होते हैं", द्रौपदी के इस कटुवचन का दुष्परिणाम महाभारत के महा भयानक विनाश कारी युद्ध के रूप मे प्रगट हुआ। प्रश्न व्याकरण सूत्र मे असत्य के तीस नाम बताये है। विस्तार भय से हम उनकी यहाँ चर्चा नही करेंगे।

इस प्रकार असत्य के स्वरूप और उसके परिणाम की विस्तृत व्याख्या महा पुरुषों ने साधक को सत्य मार्ग पर बढ़ने की प्रेरणा के लिए की है।

सत्य आत्मा की शक्ति है, जीवन की सुगंध है। साधना का सार है। मोक्ष मंजिल का मार्ग है, स्वर्ग का द्वार है। सत्य की सदा जय होती है, 'सत्यमेव जयते'

———

अचौर्य अर्चना

अनन्त करुणा के सागर परोपकारी भगवान् महावीर ने भव्य प्राणियों का चरम ध्येय मोक्ष की प्राप्ति को ही बताया है। उन्होंने साधक की सामर्थ्य शक्ति का विचार कर दो प्रकार की व्रत व्यवस्था का विधान किया। दोनों प्रकार की व्रत व्यवस्था में संख्या और मात्रा की दृष्टि से एक जैसे ही व्रतों का प्रतिपादन किया है। हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह इन पापों के प्रत्याख्यान की प्ररूपणा साधुव्रतों में पूर्ण रूप से

तीन योग से और श्रावक व्रतों में दो करण तीन योग से की गई है। अहिंसा और सत्यव्रत की साधना सबंधी विचार के बाद यहां तीसरे अस्तेय व्रत की उपासना की चर्चा आवश्यक है।

अदत्तादान विरमण

अदत्तादान विरमण अदत्तादान के अभाव को कहते हैं। अर्थात् चोरी से निवृत्ति के लिए जो व्रत धारण किया जाता है उसे 'अदत्तादान विरमण' या अस्तेय व्रत कहते हैं। अस्तेय व्रत की महत्ता को समझने के लिए अदत्तादान की भयंकरता की जानकारी जरूरी है।

अदत्तादान का स्वरूप

मन वचन काया द्वारा दूसरे की वस्तु को स्वयं हरण करना, करवाना या उसका अनुमोदन करना चोरी है। महापुरुषों ने चोरी को निकृष्ट कुलक्षण बताया है। प्रश्न व्याकरण सूत्र में अदत्तादान (चोरी) की प्रति भर्त्सना करते हुए कहा है— अदत्तादाण, "दानज्जं अकित्ति करण सया साहुगरहणिज्जं" अर्थात् अदत्तादान ससार में अपयश बढाने वाला अनार्य कर्म है। सभी सज्जन पुरुषों ने इसकी निंदा की है अदत्तादान का स्वरूप निरूपण करते हुए कहा गया है –अदत्तादान मित्रों में वैमनस्य उत्पन्न करता है। प्रीति का नाश करता है। अविश्वास को बढाता है। इससे लडाई झगडा, मार पीट कलह विवा[illegible] उत्पन्न होते हैं। वह हत्यादि भयानक कर्म कराने वाला, अनन्[illegible] संसार बढाने वाला है।

चोरी करने वाला कभी सुखी नहीं रह सकता। खा[illegible] पीना पहनना उसके लिए हराम होता है। चोरी करने वाले [illegible]

सदा निंदा अपमान दण्ड भर्त्सना तिरस्कार, ग्लानि का शिकार होना पड़ता है। धन के होते हुए भी वह पतित है। धन वैभव के होने पर भी वह दरिद्र है। नीतिकार कहता है— "दौर्भाग्य दारिद्र्यंच लभते चौर्यतो नरः" अर्थात् चोरी करने वाला दुर्भाग्य और दरिद्रता को प्राप्त होता है।

चोरी का दुष्परिणाम भोगना ही पड़ता है

'कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि' किये हुए दुष्कर्मों से छुटकारा मिलना बड़ा मुश्किल है। चोरी भी एक दुष्कर्म है उसका परिणाम भुगतते हुए लोग सदा दृष्टिगोचर होते रहते हैं। चोर को अनेक तरह से दंड दिये जाते हैं। उसके अंग छेदन कर दिये जाते हैं। जनता क्रोधित होकर डंडे,पत्थर, लात, घूसों से मरम्मत करती है। अपराध स्वीकार कराने के लिए पुलिस भी अमानवीय यातनाएं देती है। जेल में जाना पड़ता है, आजीवन कारावास भुगतना पड़ता है। एक तरह से नारकीय जीवन व्यतीत करना पड़ता है।

शास्त्र कार कहते हैं कि यह दुष्कर्म रूपी दानव छाया की तरह पीछे लगा रहता है। मरने के बाद भी उसका भयंकर परिणाम भुगतना पड़ता है। नरक में अनेक नारकीय यंत्रणाएं भुगतनी पड़ती हैं। तिर्यंच योनि में दारुण वेदना से पीड़ित होना पड़ता है। मनुष्य जन्म मिलने पर भी उत्तम कुल जाति आदि की प्राप्ति नहीं होती। शरीर कुरूप, विकृत, विकलांग मिलते, हैं। श्री ज्ञाताधर्म कथांग सूत्र में विजय चोर की कथा आती है।

धन्ना नामक सार्थवाह के पुत्र देवदत्त को अलंकारों से विभूषित देखकर विजय चोर नौकर पथक की आंख बचाकर

७८। से जाता है और त्वरित गति से राजगृह नगर के गुप्त मार्ग से निकलकर जिन नामक उद्यान के निकट भग्न कूप के पास पहुँचता है। वह देवदत्त बालक को मारकर आभूषण ले लेता है और उसके शव को भग्न कुए में डाल देता है। तदनन्तर वह मालुका कच्छ में चला जाता है और वहाँ चुपचाप गुप्त रूप से दिन व्यतीत करने लगता है।

इधर थोड़ी देर बाद पंथक नौकर देवदत्त बालक को वहाँ नहीं पाता है तो उसके होश उड़ जाते हैं। वह रोता चिल्लाता विलाप करता हुआ देवदत्त की तलाश करने लगता है। तलाश करने पर भी नहीं मिलने पर वह धन्ना सार्थवाह को यह दारुण समाचार बड़े दर्द के साथ सुनाता है।

नौकर पंथक से ऐसे भयावह रोमांचकारी समाचार सुनकर धन्ना सार्थ वाह का कलेजा धक रह जाता है। पुत्र शोक से आकुल होकर वह कुल्हाड़े से काटे चम्पक वृक्ष की तरह धड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़ता है।

थोड़े समय बाद धन्ना सार्थवाह कुछ स्वस्थ होता है। और देवदत्त कुमार की चारों तरफ तलाश कराता है। जब बालक के संबंध में उसको कोई समाचार, खबर नहीं मिलती है। तो निराश होकर कोतवाल को रिपोर्ट दर्ज कराता है। तलाश करते हुए वे भग्न कूप के पास पहुँचते हैं और उसमें बालक देवदत्त के शव को देखकर अवाक् रह जाते हैं तथा शव को निकाल कर धन्ना सार्थवाह को सौंप देते हैं। तदनन्तर कोतवाल नगर रक्षकों के साथ विजय तस्कर के पदचिन्हों का अनुसरण करते हुए मालुका कच्छ में प्रवेश कर विजय चोर को पकड़ लेता है और डंडों, मुट्ठियों, घुटनों, कोहनियों के प्रहार से सब उसको

सदा निरादर, अपमान, दण्ड, भर्त्सना, तिरस्कार, ग्लानि का शिकार होना पड़ता है। धन में रहता होते हुए भी वह पतित है। धन वैभव के होने पर भी वह दरिद्र है। नीतिकार कहता है— "दौर्भाग्यं दरिद्रत्वं लभते चौर्यतो नरः" अर्थात् चोरी करने वाला दुर्भाग्य और दरिद्रता को प्राप्त होता है।

चोरी का दुष्परिणाम भोगना ही पड़ता है

'कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि' किये हुए दुष्कर्मों से छुटकारा मिलना बड़ा मुश्किल है। चोरी भी एक दुष्कर्म है उसका परिणाम भुगतने हुए लोग सदा दृष्टि गोचर होते रहते हैं। चोर को अनेक तरह से दंड दिये जाते हैं। उसके अंग छेदन कर दिये जाते हैं। जनता क्रोधित होकर डंडे,पत्थर, लात, घूंसों से मरम्मत करती है। अपराध स्वीकार कराने के लिए पुलिस भी अमानवीय यातनाएँ देती है। जेल में जाना पड़ता है, आजीवन कारावास भुगतना पड़ता है। एक तरह से नारकीय जीवन व्यतीत करना पड़ता है।

शास्त्र कार कहते है कि यह दुष्कर्म रूपी दानव छाया की तरह पीछे लगा रहता है। मरने के बाद भी उसका भयंकर परिणाम भुगतना पड़ता है। नरक में अनेक नारकीय यंत्रणाएं भुगतनी पड़ती हैं। तिर्यञ्च योनि में दारुण वेदना से पीड़ित होना पड़ता है। मनुष्य जन्म मिलने पर भी उत्तम कुल जाति आदि की प्राप्ति नहीं होती। शरीर कुरूप, विकृत, विकलांग मिलते है। श्री ज्ञाताधर्म कथांग सूत्र में विजय चोर की कथा आती है।

धन्ना नामक सार्थवाह के पुत्र देवदत्त को अलंकारों से विभूषित देखकर विजय चोर नौकर पंथक की आंख बचाकर

... - होता है । नाम इस प्रकार है— १ चौरिक्य २. परहृत ३. अदत्त ४ क्रूरकृत ५. पर लाभ ६ असंयम ७. पर धन गृद्धि ८. लौल्य ६. तस्करत्व १०. अपहार ११. हस्त लघुत्व १२. पाप कर्म करणं १३. स्तैन्य १४. हरणविप्रणाश, १५ आदान, १६. धन लुम्पना, १७. अप्रत्यय १८ अव पीडन, १९. आक्षेप, २०. क्षेप, २१. विक्षेप, २२. कूटता, २३ कुल मषी २४. कांक्षा २५. लालपन प्रार्थना २६. आसणनाय व्यसन, २७. इच्छा मूर्च्छा २८. तृष्णा गृद्धि, २९. निकृतिकर्म, ३०. अपरोक्ष ।

चोरी के प्रकार—प्रश्न व्याकरण सूत्र में चोरी के चार प्रकार बताये हैं—(१) स्वामी अदत्त, (२) जीव अदत्त, (३) तीर्थंकर अदत्त, (४) गुरु अदत्त । श्रावक सूत्र में चोरी के पांच प्रकार बताये हैं—"अदिण्णादाणाओ पंच विहे पण्णत्ते तंजहा—खत्त खणणं, गंठिभेयणं, जतुग्घाडन, पडियवत्थु हरणं, ससामियवत्थु-हरणं । अर्थात्—खात खनना, गाठ खोलना, ताला तोड़ना मालिक की पड़ी हुई वस्तु उठा लेना, लूट खसोट कर किसी की वस्तु लेना ।

प्रश्न व्याकरण सूत्र में बताया गया है चोर लुटेरे विविध रूप बनाकर आक्रमण करते है । दूसरो का धन हरण करने के लिए अनेक प्रकार की व्यूहादि रचना करते हैं । आत्म रक्षा के लिए लोह कवच से शरीर को आवृत करते हैं । पास में विविध प्रकार के अस्त्र, शस्त्र तलवार, तीर, बर्छी, भाला, चक्र आदि रखते हैं । उनकी आकृति बड़ी भयावह प्रतीत होती है । वे क्रोधाभिभूत होकर दांतो से होठ काटते हैं । उनकी आंखे क्रोध से लाल एवं भृकुटी चढी हुई होती है । वे अनेक प्रकार के चिन्ह पट बांधते है । भयानक अटवी और विषम

रहते हैं। भयानक समुद्रों में नौकादि से प्रवेश कर बड़े बड़े वड़े जहाजो को लूटते हैं।

चोरी के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए मानसिक वाचिक और कायिक तीन प्रकार की चोरी बताई गई है। मन मे किसी की वस्तु का हरण करने के लिए संकल्प विकल्प करना मानसिक चोरी है। दूसरो की वाणी को छिपाना वाचिक चोरी है। किसी की वस्तु को उठा लेना छिन लेना कायिक चोरी है। इसी प्रकार चोरी के चार प्रकार और भी बताये हैं— द्रव्य चोरी—किसी का धनादि चुराना, (२) क्षेत्र चोरी—किसी का खेत, बाग, भूमि आदि दबा लेना। कालचोरी-किराया, ब्याज आदि का समय कम ज्यादा बताना। भावचोरी—लेखक कवि वक्ता के भावों को चुराना।

चोरी करने के कई तरीके हैं। जाली नोट, जाली हुँडी बनाना। झूंठे दस्तावेज बनाना, अधिक मुनाफा लेना, ज्यादा ब्याज कमाना, कम देना, ज्यादा लेना. वस्तु में मिलावट करना, घूस लेना देना आदि।

चोरी के सम्य उपाय

आज कल चोरी करने के तरीकों को इतना रिफाइन (शुद्धिकरण) कर दिया गया है कि चोरी करने पर पकड़ा जाना कठिन है। जेब काटने वाले, छोटी मोटी चोरी करने वाले तो जेल जाते ही हैं, सजा भुगतते ही हैं। लेकिन हजारों लाखों, करोड़ों की चोरी करने वाले साहूकार ही बने रहते हैं। जैसे कुछ लोग झूंठा जमा खर्च कर दिवाला घोषित कर देते हैं। कुछ लोग संपति के बलपर वस्तुओ का संग्रह कर लेते हैं और कृत्रिम अभाव पैदा कर भयंकर मुनाफा (चोरी करते हैं। कुछ लोग बड़ी

में प्रवृत्ति होती है। ब्रह्मचारी मादक द्रव्यों से सदा दूर
अपनी साधना उत्तम व निर्मल रखता है।

विभूषा व शृंगार का त्याग—ब्रह्मचारी सादा जीवन
[illegible] में विश्वास रखता है। शृंगार, स्नान, तेल फुलेल
वस्त्र आभूषणादि नहीं पहनता। प्रश्न व्याकरण सूत्र में कहा
"ब्रह्मचारी स्नान और दंत धावन नहीं करे। अधिक बातचीत
रे, मौन रखे, केशों का लुंचन करे। कष्ट सहन करे, आत्मा
दमन करे, अल्प वस्त्रों रखे। क्षुधा तृषा सहन करे। लाघवता
ण करे। सर्दी गर्मी सहन करे, काष्ट शैय्या पर शयन करे।"

उत्तराध्ययन सूत्र में भी कहा है—

विभूसं परिवज्जिज्जा सरीर परिमण्डनम्।
बंभचेररओ भिक्खू सिंगारत्थं न धारए।।

र्य में रत साधु शरीर, नख, केश आदि का संस्कार न करे
वस्त्रादि से शरीर को सुशोभित नहीं करे।

उपवास तप का आराधन—जैनागमों में तप का प्रति-
विशेष रूपसे इसलिए किया है कि इससे ब्रह्मचर्य व्रत सुरक्षित
है। उत्तराध्ययन सूत्र में आहार त्याग के छः कारणों में
कारण यह भी बताया है कि ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए
र का त्याग करे। आयुर्वेद में कहा है कि 'आहार को अग्नि
ती है और दोषों को उपवास पचाते हैं।'

इसी प्रकार ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए प्रश्न व्याकरण सूत्र
भावनाएं और उत्तराध्ययन सूत्र में दस समाधि स्थान भी
है।

अब्रह्मचर्य से निंदा—अब्रह्मचर्या की लोक और लोकोत्तर दोनों दृष्टि कोण से निंदा की जाती है। प्रश्न व्याकरण सूत्र में अब्रह्मचर्या को अधर्म का द्वार कहा गया है। इसे वध, बंधन, आघात, दर्शन मोहनीय एवं चारित्र मोहनीय कर्म का हेतु कहा है। इसी सूत्र में अब्रह्मचर्य के तीस नाम बताते हुए उसकी घोर निंदा की गई है। कामान्ध व्यक्ति हिंसक हो जाता है। इतिहास के अध्ययन से पता चलता है इसके कारण खून की नदियां बहीं साम्राज्यों के तख्ते पलट गये। मान मर्यादा को भूला दिया गया नीति नियमों को मिटा दिया गया।

मणिरथ ने अपने छोटे भाई युगबाहु की पत्नी मदन रेखा पर कुदृष्टि डाली। उसने अपनी कुत्सित कामना की पूर्ति के लिए मदन रेखा को फुसलाने के लिए बहुत प्रयत्न किये, लेकिन सती मदन रेखा के मन में लेशमात्र भी पाप का संचार नहीं हुआ। मदन रेखा की दृढ़ता देखकर मणिरथ हैरान हो गया और अन्त में उसने युग बाहु को मौत के घाट उतारने का निश्चय किया। एक बार युग बाहु वन में बसन्तोत्सव मना रहा था कि अचानक मणिरथ वहाँ पहुँचा, उसने युगबाहु को पुनः शत्रुओं का दमन करने की बात कही। युग बाहु को मणिरथ की बात में कुछ तथ्य नजर नहीं आया। उसने उसकी मनगढ़न्त योजना का अभिप्राय समझकर राजा को उस समय वहाँ आने और मर्यादा भंग करने का उपालंभ दिया। राजामणिरथ के चेहरे पर मुर्दनी छागई वह बोला—'मुझे प्यास लगी है थोड़ा पानी पिलाओ' युगबाहु ज्यों हि पानी पिलाने के लिए तैयार हुआ मौका देखकर उसने उसपर तलवार का वार कर दिया। इधर पेहरेदारों ने मणिरथ को घेर लिया, कोलाहल सुनकर मदन रेखा बाहर आई और उसने यह सर्व विनाश कारी दृश्य देखा, उसको महान् आघात लगा। लेकिन उसने अपना धैर्य नहीं खोया। उसने अपने पति का अन्तिम समय

ने के लिए उस पर से मोह और भाई पर से क्रोध द्वेष हटाने का निवेदन किया। उसने कहा—'यह शान्ति है, सब जीवों से क्षमा याचना कीजिये और अपने भाई क्षमा की अभिलाषा कीजिये' इस प्रकार उसने अपने पति भावों को विशुद्ध बनाया, धन्य सती मदन रेखा जिसने घोर ष्ट काल में भी अपना कर्त्तव्य निभाया।

उधर मणिरथ पहरे दारों से मुक्त होकर भागा तो रास्ते उसके घोड़े का पाव सर्प की पूंछ पर गिर गया और उसने ष कर मणिरथ को डस लिया। मणिरथ चल बसा कथा को पढ़ने वाले सज्जन युग युग तक मणिरथ की दुर्वासना निंदा करते रहेंगे।

अब्रह्मचर्य विषरूप है। विषय भोगों का सेवन भयंकर नाशक है। कामोपभोगों में फसे लोगों की दशा नाक के में फसी हुई मक्खी के समान होती है।

उत्तराध्ययन सूत्र में कहा है—
सल्लं कामा विसं कामा कामा आसी विसोवमा।
कामे पत्थेमाणाय, अकामा जन्ति दुग्गई॥

काम भोग शल्य रूप हैं विषरूप हैं और आशी विष के है जो काम भोग की चाह करता है वह काम भोगों को भोगने पर भी दुर्गति में जाता है।

काम भोग आत्मा के लिए महान् अहित कर है। इनसे ह सुख की प्राप्ति हो सकती है लेकिन इनके परिणाम स्वरूप काल तक दुःख भोगना पड़ता है—'खणमत्त सुक्खा बहुकाल ।'

अपरिग्रह उपासना

तृष्णा दुःख का मूल कारण है। सभी प्राणी इसके वश
में भाग रहे हैं, भटक रहे हैं। हर व्यक्ति भोग उपभोग
साधन जुटाने में व्यस्त है। मनुष्य सोचता है पास में जितना
अधिक धन होगा, संपति ज्यादा होगी, उतना ही सुखी बन
जाएगा। आज का मानव भी इसी इच्छा से प्रेरित होकर भौतिक
साधनों को जुटाने के लिए तीव्र प्रतिस्पर्धा कर रहा है। परिणाम
स्वरूप विचारों में आये इस विकार के कारण परेशान व
संतप्त है।

पदार्थों में सुख नहीं है

व्यक्ति अज्ञान और मोहवश पदार्थों में सुख ढूंढता है।
ज्ञानी फरमाते हैं पदार्थों में सुख नहीं है। जो पदार्थ आज सुख-
कर और प्रिय प्रतीत हो रहे हैं, वे ही कालान्तर में दुखकर और
अप्रिय मालूम होने लगते हैं। जिस धन की प्राप्ति के लिए व्यक्ति
दिन रात एक करता है, छल कपट माया का सेवन करता है,
वही धन कभी प्राण नाश का कारण बनता है, कारागृह
का मेहमान (टेक्स चोरी के कारण) भी बनाता है। प्रिय जन
के वस्त्राभूषण जो कभी प्रिय और मनोहर लगते थे, वे ही
उसके वियोग होने पर अशुभ और आर्त ध्यान के निमित्त बन
जाते हैं। वह पुत्र जो बचपन में माता पिता की आंखों का तारा
हृदय का दुलारा था, वही बड़ा होने पर दुराचारी हो जाने पर
आंखों का कांटा और दिल की कसक बन जाता है। उसका नाम
सुनने मे भी कष्ट होता है। अगर पदार्थ में सुख होता तो एक
ही पदार्थ एक ही समय में सुख का और दूसरे समय में दुःख
का कारण कैसे बनता?

काम भोग किंपाक फल के समान है। किंपाक फ
खाने में स्वादिष्ट, देखने में मनोहर, सूंघने में सुवास युक्त होत
है, लेकिन उसका भक्षण हलाहल विष से कम नहीं होता।

कवि भोगों से सावधान रहने के लिए कहता है-
मीठे मीठे काम भोग में फसना मत देवाणुपिया।
बहुत बहुत कड़वे फल पीछे होते हैं देवाणुपिया।

जिस प्रकार वीणा के मधुर स्वर से आकर्षित होकर हिरण जा
में फस जाता हैं। पतंग जलती हुई लौ पर मुग्ध होकर प्रा
गवाता है। सर्प केतकी की सुगंध में मस्त होकर मारा जाता
उसी प्रकार काम भोगों में फसकर जीव भव भव में दुख भोगत
हुआ दुर्गति में भ्रमण करता है।

आत्मिक आनंद का रसास्वादन करने वाले महापुर
इन जघन्य भोगों को ठुकरा देते हैं। जो इन तुच्छ भोगों में र
पचे हैं वे चिंतामणी रत्न को त्याग कर काच के टुकड़ों
अनुराग रखते हैं।

इस प्रकार जो अब्रह्मचर्य का पालन करते हैं वे स्वय
सुखी बनते हैं। एक ब्रह्मचर्य की साधना से अनेक गुणों की प्रा
स्वयमेव हो जाती है—

अणेग गुणा अहीणा भवति एकम्मि बभचेरे

अपरिग्रह उपासना

तृष्णा दुःख का मूल कारण है। सभी प्राणी इसके वश भाग रहे हैं, भटक रहे हैं। हर व्यक्ति भोग उपभोग जुटाने में व्यस्त है। मनुष्य सोचता है पास में जितना धन होगा, संपत्ति ज्यादा होगी, उतना ही सुखी बन ... आज का मानव भी इसी इच्छा से प्रेरित होकर भौतिक ... को जुटाने के लिए तीव्र प्रतिस्पर्धा कर रहा है। परिणाम ... विचारों में आये इस विकार के कारण परेशान व ... खिन्न है।

पदार्थों में सुख नहीं है

व्यक्ति अज्ञान और मोहवश पदार्थों में सुख ढूंढता है। ... फरमाते हैं पदार्थों में सुख नहीं है। जो पदार्थ आज सुन्दर और प्रिय प्रतीत हो रहे हैं, वे ही कालान्तर में दुखकर और अप्रिय मालूम होने लगते हैं। जिस धन की प्राप्ति के लिए व्यक्ति दिन रात एक करता है, छल कपट माया का सेवन करता है, वही धन कभी प्राण नाश का कारण बनता है, कारागृह का मेहमान (टैक्स चोरी के कारण) भी बनाता है। प्रिय जन ... वस्त्राभूषण जो कभी प्रिय और मनोहर लगते थे, वे ही उसके वियोग होने पर अशुभ और आर्त ध्यान के निमित्त बन जाते हैं। वह पुत्र जो बचपन में माता पिता की आंखों का तारा हृदय का दुलारा था, वही बड़ा होने पर दुराचारी हो जाने पर आंखों का कांटा और दिल की कसक बन जाता है। उसका नाम सुनने मे भी कष्ट होता है। अगर पदार्थ में सुख होता तो एक ही पदार्थ एक ही समय में सुख का और दूसरे समय में दुःख का कारण कैसे बनता?

एक बार एक योगी के पास चार व्यक्ति आये। उन्हें अपने कष्ट निवारण के लिए प्रार्थना की। योगी पूछा—"तुम लोगों को क्या चाहिये" ? एक ने कहा—यश चाहिये', दूसरे ने कहा - 'मुझे पुत्र चाहिये' तीसरे ने क 'मुझे धन की जरूरत है'। चौथे ने कहा "मुझे सुन्दर स्त्री आवश्यकता है"। योगी ने चारों को आशीर्वाद देकर उ मनोकामना पूर्ण की। कुछ दिन बाद चारों व्यक्ति फिर के पास उपस्थित हुए। योगी ने पुनः आने का कारण पूछ पहला व्यक्ति बोला—'आपकी कृपा से यश तो बहुत लेकिन ईर्षा की अग्नि मुझे जला रही है। दूसरा बोला—पुत्र बहुत हो गये लेकिन आज्ञाकारी एक भी नहीं है। तीसरा बोल धन तो बहुत हो गया, लेकिन रात दिन उसकी रक्षा की चि से दुःखी हूँ। चौथा बोला—"महात्मन् आपकी कृपा से स्त्री सुन्दर मिली, लेकिन उसके संसर्ग से ऐसा रोग लग गया है जीना दुभर हो गया है"। योगी ने समझाया सांसारिक पदार्थ स्त्री पुत्र में वास्तविक सुख नहीं है। अगर इनमें सुख होता दुनिया दुखी क्यों दिखाई पड़ती ?

तृष्णा का पार नहीं

भगवान महावीर के फरमाया कि तृष्णा का पार नहीं है। अगर किसी एक मनुष्य को चावल, जो, स्वर्ण तथा पशुओं से परिपूर्ण पृथ्वी दे दी जाय तो भी उसकी इच्छा पूर्ण होना कठिन है—

पुढ़वी साली जवा चेव, हिरण्ण पसुभिस्सह।
पडिपुण्ण णालमेगस्स, इह विज्जा तव चरे ॥

सौंपि मिले सुरलोक निधि लगी, पूरणता मन में नहिं र
एक सतोष बिना ब्रह्मानंद, तेरी सुधा कब हु न जो

इसलिए ज्ञानियों ने तृष्णा की शांति करने का उप
दिया। तृष्णा की शांति आध्यात्मिक साधना की क्रान्ति है
इच्छा का निरोध सच्चे सुख की शोध है। इच्छाओं का द
आत्मा को चमन बनाने का प्रयास है, साधना का सार है
तक मन आशा और तृष्णा की डोर से बंधा रहेगा, उन्मु
विकास नहीं कर सकेगा, अतः साधक इच्छा, तृष्णा की डोर
काटना चाहता है। वह समझता है कि चाह चिन्ता की जन
है। अगर चाह नहीं रही तो मोक्ष की राह प्रशस्त बन सक
है। कवि कहता है –

चाह गई चिंता मिटी, मनुआ बे परवाह।
जिसको कुछ नहीं चाहिये, सो जग शाहंशाह ॥

परिग्रह का अर्थ

'परिग्रह' की व्युत्पत्ति करते हुए कहा गया है 'परिग्रह
परिग्रहः' जिसको ग्रहण किया जाय वह परिग्रह है। लोग उ
वस्तु को ग्रहण करते हैं जिनका उनपर मोह होता है, जो उन्हें
मनोहर और मनोज्ञ लगती हैं। अमनोज्ञ वस्तु का संचय को
नहीं करता। इसका अर्थ यह है कि परिग्रह ममत्व है, मोह है।
यह आत्मा के विकास में बाधा डालने वाला है। पदार्थ ज
हो या जीव, रूपी हो या अरूपी, छोटा हो या बड़ा, जिससे क्रोध
मान माया लोभ उत्पन्न होते हैं वे परिग्रह के अन्तर्गत आते हैं।
परिग्रह बंधन है इसके कारण आत्मा जन्म मरण से मुक्त नहीं
हो सकती। परिग्रह बोझ है जो आत्मा को मोक्ष मार्ग की ओर
अग्रसर नहीं होने देता। पदार्थों के प्रति ममत्व भाव एवं मूर्च्छा

को भगवान ने परिग्रह कहा है —'मुच्छा परिग्गहो वुत्तो'। शास्त्रकारों ने परिग्रह का सूक्ष्म स्वरूप समझाते हुए कहा—कि अगर ज्ञान के प्रति भी अभिमान है तो वह भी परिग्रह रूप है। परिग्रह कभी सुख रूप नहीं है। परिग्रह में फंसा व्यक्ति शहद में लिपटी मक्खी की तरह उससे छूटने के प्रयास में उसमें और अधिक फंसता जाता है—

> मक्खी बैठी शहद पर, पंख गये लपटाय।
> हाथ मले, अरु सिर धुने, लालच बुरी बलाय॥

परिग्रह प्रपंच है, पाप का दलदल है। साधक चाहे श्रावक ही क्यों न हो उसे भी इस प्रकार चिंतन करना चाहिये—

> परिग्रह पाप का दलदल, फंसा है फंसता जाता है।
> घटे थोड़ा बहुत प्रतिदिन, बड़ा ही कष्ट पाता है॥

परिग्रह के भेद—

शास्त्रकारों ने परिग्रह के दो भेद किये हैं—बाह्य परिग्रह एवं आभ्यंतर परिग्रह।

बाह्य परिग्रह—इसके भी दो भेद हैं जड़ और चेतन।

जड़—इसके अन्तर्गत वे सब पदार्थ आते हैं जो अचेतन और निर्जीव हैं—जैसे सोना-चाँदी, वस्त्र, पात्र, मकानादि।

चेतन—चेतन में नौकर-चाकर, पशु-पक्षी आदि आते हैं।

आभ्यन्तर परिग्रह—मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय आदि को आभ्यन्तर परिग्रह माना है। आभ्यन्तर परिग्रह का उत्पत्ति स्थान मन है, अतः मन में ममता बढाने वाले भाव विचार परिग्रह है।

मिथ्यात्व—जिस मोहनीय कर्म के उदय से आत्मा स्वरूप को भूलकर परभाव मे रमण करे, वीतराग के वचन को न्यूनाधिक श्रद्धे, अनेकान्त को एकान्त माने यह मिथ्यात्व परिग्रह है। मिथ्यात्व अधर्म का मूल और भयकर पाप है, इससे आत्मा जन्म-मरण के चक्कर में पड़ी रहती है।

तीन वेद—आत्मा स्वरूप को भूलकर जिस विकृत अवस्था में बहे और स्त्रीत्व, पुरुषत्व या नपुंसकत्व वेदे, उस उस अवस्था का नाम वेद है। यह तीन प्रकार का वेद भी आभ्यन्तर परिग्रह है।

नो कषाय - हास्यादि छः अवस्थाओं को भी आभ्यतर परिग्रह में लिया है। किसी के सयोग वियोग या पौद्गलिक हानि-लाभ से कौतूहल होना हास्य कहलाता है। किसी शुभ पदार्थ मे अनुराग होना रति है और किसी अशुभ पदार्थ में अरुचि होना अरति है। किसी अप्रीतिकर पदार्थ को देखकर डरना, भय कहलाता है। अरुचिकर पदार्थ से घृणा होना जुगुप्सा (जुगुप्सा) है। इष्ट वस्तु का वियोग होने पर मन म शोक उत्पन्न होना है। उक्त छः आभ्यन्तर परिग्रह है।

चार कषाय - क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार कषाय भी आभ्यतर रूप है।

भगवती सूत्र में भगवान ने कर्म, शरीर और भण्डोपकरण को परिग्रह बताया है। ये तीनों बाह्य और आभ्यतर में आ जाते है जब तक साधक इन तीनों से निवृत्त नही होता, उसे मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती।

विचार करने से स्पष्ट होता है कि पदार्थ परिग्रह रूप नहीं है। पदार्थों पर आसक्ति परिग्रह है। पदार्थों से आसक्ति हटा लेना अपरिग्रह है—

'सर्वं भावेषु मूर्च्छायास्त्यागः स्याद परिग्रह', ओघनियुक्ति

आभ्यंतर परिग्रह बाह्य परिग्रह का आधार

बाह्य परिग्रह का आधार आभ्यन्तर परिग्रह है। जबतक आभ्यंतर परिग्रह विद्यमान रहता है—बाह्य परिग्रह से निवृत्त होने की कल्पना भी नहीं की जा सकती। सबसे बड़ा आभ्यंतर परिग्रह मिथ्यात्व है, यह जबतक आत्मा में बना रहेगा, तब तक यह वस्तु या विचार परिग्रह है, यह बात समझ में ही नहीं आयेगी। आत्मा पर परिग्रह भार है यह तभी समझ में आयेगा जब मिथ्यात्व छूटेगा। प्रश्नव्याकरण सूत्र में लोभ क्लेश कषाय रूप आभ्यंतर परिग्रह को परिग्रह रूपी वृक्ष के स्कन्ध कहा है—

लोह-कलि-कषाय महक्खंधो।
चिंता सय णिचिय विपुल सालो॥

अर्थात्—लोभ, युद्ध और कषाय परिग्रह रूप वृक्ष के स्कन्ध हैं। चिंता रूपी सैंकड़ों ही सघन और विस्तीर्ण उसकी शाखाएं हैं। अतः भगवान ने सब प्रकार के परिग्रह से अपने को मुक्त करने का संदेश दिया है।

'परिग्गहाओ अप्पाणं अवसक्किज्जा' आचारांग

कनक कामिनी मोटा परिग्रह है

मनुष्य का सर्वाधिक मोह कनक और कामिनी पर होता है। संसार का इतिहास इस बात का साक्षी है कि अधिकांश युद्ध, हिंसा, विद्रोह, रक्तपात, स्त्री और धन के लिए हुए। दोनों [illegible] का चित्रण इस प्रकार किया है—

आशा पाश महादुःख दानी ।
सुख पावे संतोषी ज्ञानी ।।

जब तक पदार्थ को पाने की लालसा बनी रहेगी अपरिग्रही बनना कठिन होगा। अगर कोई परवशता या दरिद्रता के कारण किसी वस्तु को प्राप्त नही कर सकता है तो वह त्यागी नही है।

पाच महाव्रतों मे अपरिग्रह व्रत का पालन बड़ा कठिन है। जो इसका पालन करता है वह शेष चार महाव्रतों का सम्यक् पालन करसकता है। पांच महाव्रत का पारस्परिक सापेक्षिक संबंध है, अगर गहराई से विचार किया जाय तो चार महाव्रतों का समावेश इसमें माना जा सकता था। भगवान पार्श्व नाथ के समय में ब्रह्मचर्य नाम का चौथा महाव्रत अपरिग्रह व्रत में ही माना जाता था।

भगवान ने मुनि के लिए वस्त्र धर्मोपकरण मर्यादा नुसार रखने का विधान किया है। संयम और लज्जा के रक्षार्थ उक्त साधनों की अपेक्षा रहती है अगर उन पर ममत्व की भावना आ जाती है तो वे परिग्रह के रूप ही माने जायेंगे। कुछ साधक संसार त्याग कर भी ममत्व में पड़े रहते हैं। शिष्य शिष्याओं, श्रावकों का मोह उन्हें जकड़े रहता है। वाचनालय, विद्यालय स्थानक निर्माण कराने के चक्कर में पड़े रहते हैं, लेकिन विचार करने की बात है कि इसमें महाव्रत धारी मुनियों के महाव्रतों का संरक्षण कैसे हो सकता है? आरंभ परिग्रह की प्रवृत्तियों का उपदेश देना और उन्हें क्रियान्वित कराने मे मुनि मर्यादा का पालन कैसे हो सकता है? वीर लोकाशाह ने साधु जीवन में आये इस शिथिलाचार को मिटाने के लिए क्रान्ति की थी, और शास्त्रानुसार संयम निर्वाह की अनुमोदना की थी।

मे वंचित न रहे इस को लक्ष्य कर इच्छा परिमाण व्रत का विद्
किया गया है। भगवान् जानते थे कि गृहस्थ लोग इच्छा
सर्वथा त्याग नहीं कर सकते हैं अतः उनके लिए इच्छा परिमा
व्रत का अपरिग्रह के मार्ग पर अग्रसर होने के लिए उपदे
दिया। इच्छाओं को सीमित करते हुए ममत्व को घटाते
एक दिन वह शुभ घड़ी आ सकती है कि सर्वथा रूप से अपरि
व्रत धारण करने की क्षमता प्राप्त हो सके।

इच्छा परिमाण व्रत का अर्थ है सासारिक पदार्थों
संबंध रखने वाली इच्छाओं को सीमित करना। इस व्रत के द्वा
साधक यह प्रतिज्ञा करता है कि इन पदार्थों से अधिक पद
अपने पास नहीं रखूंगा, और इन पदार्थों के अतिरिक्त पदा
की इच्छा भी नहीं करूंगा। इस प्रकार आंशिक रूप से परि
का विरमण करने से महा परिग्रही बनने से बचा जा सकता है

संसार में जितने भी पदार्थ हैं वे या तो सचित्त हैं
अचित्त! जन साधारण की सुविधा के लिए शास्त्रकारों
सचित्त और अचित्त परिग्रह को नव भागो में विभक्त कर दिया है—

(१) क्षेत्र (खेत आदि भूमि) (२) वास्तु (निवास यो
स्थान) (३) हिरण्य (चादी) (४) सुवर्ण (सोना) (५) धन (सोने
चांदी के ढले सिक्के) (६) धान्य (गेहूँ, चावलादि) (७) द्विपद
(जिसके दो पैर हों मनुष्य पक्षी आदि) (८) चौपद (चार पाव
वाले-गाय, घोड़ा आदि) (९) कुप्य (वस्त्र, पात्र, औषध
वासनादि) उक्त सात भेदों में जड़ चेतन स्थावर जंगम आदि
सभी पदार्थ आ जाते हैं। इनकी मर्यादा करने से गृहस्थ जीवन
सुखी बनता है।

इच्छा परिमाण व्रत का उद्देश्य ममत्व को घटाना है, ...लिए मर्यादा को जितना, अधिक संकुचित किया जावेगा ...तना ही दुःख और ममत्व परिभ्रमण सीमित बनेगा। अल्प ...रिग्रह अल्प दुःख का कारण है अतः जो जितना परिग्रह से निवृत ...हो सके, वह उसके लिए कल्याण कारी है। धर्म साधना और ईश ...भक्ति के मार्ग में परिग्रह बाधक है। कवि कहता है—

> कामी क्रोधी लालची, इनसे भक्ति न होय।
> भक्ति करे कोई सूरमा, जाति वर्ण कुल खोय॥

लालसा - इच्छाओं का त्याग करने से ही धर्म साधना मार्ग प्रशस्त बन सकता है।

काव्य-विभाग

श्री महावीर-गुण-कीर्तन

(तर्ज—जिन धर्म का डंका आलम में···)

१. मन स्थिर करके २. नत मस्तक हो, हे वीर! ३. प्रार्थना करते हैं।
१. मन २. वच ३. तन तीनों योगों से, तेरा आराधन करते हैं। टेर।
हरि हर बुद्धादि की सेवा, बहु काल करी पर व्यर्थ गई।
अब तेरी सेवा चाहते हैं १. महा ब्राह्मण तुम्हें समझते हैं॥१॥
इस भव अटवी में हम गायें, सिंहों के पंजों में जकडी।
पहुँचा दो हमें मुक्तिवाडे, २. महा ग्वाला तुम्हें समझते हैं॥

इस भव वन में हम व्यापारी, चोरों से लूटे जाते हैं।
पहुँचा दो हमें मुक्ति नगरी, ३. महा सार्थवाह हम समझे हैं ॥३
इस भव वन में हम बच्चों को, अब तक सब ने भरमाया है।
अब तुम भव वन से मुक्त करो, ४. महाधर्म कथी हम समझे हैं ॥४
इस भव जल में दिङ्मूढ़ बने, नैयाएँ इत उत डोल रही।
अब पार लगा दो 'पारस' को ५ महानाविक तुम्हें समझते हैं ॥५
निर्भक्ति शत्रु गोशालक भी, इस कीर्तन से इच्छित पाया।
यह सुन तेरा यह कीर्तन कर, हम भक्त मुक्ति को चाहते हैं ॥६

—उपासकदशांग ६ के भावों ।

"तीन मनोरथ"

(तर्जः—कभी सुख है, कभी दुःख है ···)

मनोरथ तीन उत्तम ये, जिनेश्वर ! नित्य भाता हूँ।
कृपा की आश रखता हूँ, सफल हो शीघ्र चाहता हूँ ॥टेर॥
१. परिग्रह पाप का दलदल, फंसा हूँ फसता जाता हूँ।
घटे थोड़ा बहुत प्रतिदिन, बड़ा ही कष्ट पाता हूँ ॥१॥
२. प्रमादी गृहस्थ जीवन हैं, अधूरी धर्म करणी है।
बनूँगा कब मुनि ? मुझ में, हो ऐसी शक्ति चाहता हूँ ॥२॥
३. मोक्ष की है लगन पूरी, न कोई अन्य आशा है।
देह छूटे समाधि से, अन्त शुभ भाव चाहता हूँ ॥३॥
दीन हूँ दीनता करता, देवता ! दान तूं करना।
मनोरथ पूर्ण सब करना, चरण तेरे पकड़ता हूँ।"

रस' सुनो 'केवल'! विरुद (पद) अपना निभाना तुम।
व और आगे क्या? न खोजे शब्द पाता हूँ ॥५॥

—स्थानांग ३, ४, के भावों पर।

तीन तत्व

(तर्ज:—चुप चुप खड़े ...)

। २. गुरु ३. धर्म, तत्व, तीन ये महान है।
पहिचाने वह 'सच्चा बुद्धिमान है ॥टेर॥

में तोड़ महावीर अरिहंत हो गये।
सर्व जग हित, देशना सुना गये। जी, २।
को मीठा घूंट पी ले, अमृत महान् है ॥१॥

र पुत्र महामुनि करमों से झूझते।
क सुखों को छोड़, आत्म-सुख ढूंढते। जी, २।
काय प्रतिपाल, गुण के निधान है ॥२॥

हिंसा प्रधान धर्म, वीर ने बताया है,
पुण्यवानी महा, जो कि हाथ आया है, जी, २।
में जो पाले वह, पावे निर्वाण है ॥३॥

क्या है ? 'रत्न' है ये, मूल्य न अमान है।
से सुख में ये, जन्म-जन्म साथ है। जी, २।
' को 'पारस' को, देय ज्ञान दान है ॥४॥

इस भव वन में हम व्यापारी, चोरों से लूटे जाते हैं।
पहुँचा दो हमें मुक्ति नगरी, ३. महा सार्थवाह हम समझे हैं ।।३

इस भव वन में हम बच्चों को, अब तक सब ने भरमाया है।
अब तुम भव वन से मुक्त करो,४. महाधर्म कथी हम समझे हैं ।।४

इस भव जल में दिङ्मूढ़ बने, नैयाएँ इत उत डोल रहीं।
अब पार लगा दो 'पारस' को ५. महानाविक तुम्हें समझते हैं ।।५

निर्भक्ति दासु गोशालक भी, इस कीर्तन से इच्छित पाया।
यह सुन तेरा यह कीर्तन कर, हम भक्त मुक्ति को चाहते हैं ।।६

—उपासकदशांग ६ के भावों

"तीन मनोरथ"

(तर्ज:—कभी सुख है, कभी दुःख है ...)

मनोरथ तीन उत्तम ये, जिनेश्वर ! नित्य भाता हूँ।
कृपा की आश रखता हूँ, सफल हों शीघ्र चाहता हूँ ।।टेर।।

१. परिग्रह पाप का दलदल, फसा हूँ फंसता जाता हूँ।
घटे थोड़ा बहुत प्रतिदिन, बड़ा ही कष्ट पाता हूँ ।।१।

२. प्रमादी गृहस्थ जीवन हैं, अधूरी धर्म करणी है।
बनूँगा कब मुनि ? मुझ में, हो ऐसी शक्ति चाहता हूँ ।।२।

३. मोक्ष की है लगन पूरी, न कोई अन्य आशा है।
देह छूटे समाधि से, अन्त शुभ भाव चाहता हूँ ।।३।।

दीन हूँ दीनता करता, देवता ! दान तूं करना।
मनोरथ पूर्ण सब करना, चरण तेरे पकड़ता हूँ ।।४।।